ॐ

नमोऽनेकान्ताय

आप्तमीमांसा।

(देवागम)

वचनिका

भाषाकर्ता—

पं. जयचंदजी छावडा।

मुनि अन्तकीर्ति ग्रंथमालाका चतुर्थ पुष्प।

श्रीवीतरागाय नमः ।

आप्तमीमांसा

अर्थात्

श्रीस्वामिसमन्तभद्रविरचित आप्तमीमांसा देवागमअपरनाम ग्रंथकी

जयपुरनिवासी पंडितप्रवर जयचन्द्रजीकृत

भाषा वचनिका।

प्रकाशक—

मुनि अनंतकीर्तिग्रन्थमाला समिति ।

प्रथमावृत्ति] [

प्रकाशक—
राजमल बडजात्या मंत्री,
मुनिअनंतकीर्तिग्रंथमाला
कालबादेवी रोड बम्बई।

मुद्रक—
मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ४३४,
ठाकुरद्वार, बम्बई।

श्री वीतरागायनमः

नियमावली ।

मुनि श्री अनन्तकीर्ति ग्रंथमाला ।

१ यह ग्रन्थमाला श्री अनन्तकीर्ति मुनिकी स्मृतिमें स्थापित हुई है जो दक्षिण कनडाके निवासी दिगम्बर साधु चारित्रके तत्र ज्ञानपूर्वक पालनेवाले थे और जिनका देहत्याग श्री गो० दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मुरैना (गवालियर) हुआ था ।

२ इस ग्रन्थमाला द्वारा दिगम्बर जैन संस्कृत व प्राकृत ग्रन्थ भाषाटीका सहित तथा भाषाके ग्रन्थ प्रबंधकारिणी कमेटोकी सम्मतिसे प्रकाशित होंगे ।

३ इस ग्रन्थमालामें जितने ग्रन्थ प्रकाशित होंगे उनका मूल्य लागत मात्र रक्खा जायगा लागतमें ग्रन्थ सम्पादन कराई संशोधन कराई छपाई जिल्द बधाई आदिके सिवाय आफिस खर्च भाड़ा और कमीशन भी सामिल समझा जायगा ।

४ जो कोई इस ग्रन्थमालामें रु. १००) व अधिक एकदम प्रदान करेंगे उनको ग्रन्थमालाके सब ग्रन्थ विनान्योछावरके भेट किये जायगे यदि कोई धर्मात्मा किसी ग्रन्थकी तैयारी कराईमें जो खर्च परे वह सब देवेंगे तो ग्रन्थके साथ उनका जीवन चरित्र तथा फोटो भी उनकी इच्छानुसार प्रकाशित किया जायगा यदि कमती सहायता देगे तो उनका नाम अवश्य सहायकोंमें प्रगट किया जायगा इस ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित सब ग्रन्थ भारतके प्रान्तीय सरकारी पुस्तकालयोंमें व म्यूजियमोंकी लायब्रेरियोंमें व प्रसिद्ध २ विद्वानों व त्यागियोंको भेटस्वरूप भेजे जायंगे जिन विद्वानोंकी संख्या २५ से अधिक न होगी ।

५ परदेशकी भी प्रसिद्ध लायब्रेरियों व विद्वानोंको भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ मंत्री भेट स्वरूपमें भेज सकेंगे जिनकी संख्या २५ से अधिक न होगी।

६ इस ग्रन्थमालाका सर्व कार्य एक प्रबंधकारिणी सभा करेगी जिसके सभासद ११ व कोरम ५ का रहेगा इसमें एक सभापति एक कोषाध्यक्ष एक मंत्री तथा एक उपमंत्री रहेंगे ।

७ इस कमेटीके प्रस्ताव मंत्री यथा संभव प्रत्यक्ष व परोक्ष रूपसे स्वीकृत करावेंगे ।

८ इस ग्रन्थमालाके वार्षिक खर्चका बजट बन जायगा उससे अधिक केवल १००) मंत्री सभापतिकी सम्मतिसे खर्च कर सकेंगे ।

९ इस ग्रन्थमालाका वर्ष वीर सम्वत्से प्रारम्भ होगा तथा दिवाली तकको रिपोर्ट व हिसाब आडीटरका जचा हुआ मुद्रित कराके प्रति वर्ष प्रगट किया जायगा।

१० इस नियमावलीमें नियम नं. १–२–३ के सिवाय शेषके परिवर्तनादि पर विचार करते समय कमसे कम ९ महाशयोंकी उपस्थिति आवश्यक होगी।

श्री दि० जैन मुनि अनंतकीर्तिग्रंथमालाके मुख्यसहायक महाशय ।

२२०२) सेठ गुरुमुखरायजी सुखानंदजी बम्बई.
 ११०१) मुनिमहाराजके आहार दान समय.
 ११०१) यात्रार्थ आये हुए दिल्लीके संघके समय.
११०१) से. हुकमचंदजी जगाधरमलजी-दिल्ली.
११०१) से. उम्मेदसिंहजी मुसद्दीलालजी-अमृतसर.
५०१) श्री जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय-बम्बई.
४११) श्री धर्मपत्नी लाला रायबहादुर हजारीलालजी-दानापुर.
२५१) से. नाथारंगजी वाले-बम्बई.
२०१) से. चुन्नीलाल हेमचंदजी-बम्बई.
१०१) साहु सुमतिप्रसादजी-नजीवावाद.
१०१) लाला जुगलकिशोरजी-हिसार.
१०१) श्री जैनधर्मवर्धिनी सभा बम्बई ।
१०१) राजमलजी बड़जात्या बम्बई ।
१०१) से. बैजनाथजी सरावगी हाथरस ।
१०१) से. कस्तूरचंद वेचरदासजी बम्बई ।
१०१) लाला जैनेन्द्रकिशोरजी ।

ठि:—उत्तमचंद भरोसालाल-आगरा ।

भूमिका ।

ग्रन्थकर्ताओंका परिचय

स्वामी समंतभद्राचार्य.

सकलदर्शनपादपपारिजात अनवद्य अनाद्यनिधन इस दिगम्बर जैन संप्रदायमें तीर्थेश भगवान् श्री १००८ महावीरस्वामीजीके मोक्ष गये बाद वीरप्रभुके सर्वहितकर शान्तिप्रद धर्मका प्रचार करने वाले अनेक प्रतिभाशाली महर्षि तथा विद्वान् ऐसे हो गये हैं कि जिनके वाक्य तथा कृत्य कलिकालमें उस तीर्थकताके पूर्ण उद्भवक हैं । क्योंकि उन्होंने भगवानके शीतल सोम सुगन्ध सिद्धान्तका प्रसार उस खूबीके साथ किया है कि जिस तरह मलय चंदन सुगन्धिका दक्षिण वायु करता है उन ऋषियोंमें प्रभुधर्मके यथार्थ प्रवर्त्तक अनेक ऋषियोंके बाद श्री स्वामी समन्तभद्राचार्यजी एक ऐसे प्रतिभाशाली विद्वान् होगये हैं कि जिनकी कृति तथा अतिशयपांडित्यप्रतिभाप्रभावके गौरवका प्रायः सर्वही प्रतिभाशाली ऋषि तथा विद्वानोंने बहुतही स्तुत्य प्रशंसाके साथ कीर्तन किया है । जैसे कि भट्टा अकलंकदेवजी तथा स्वामी विद्यानंदजीने अपने अष्टशती तथा अष्टसहस्री ग्रंथमें मंगलरूप पद्यों द्वारा स्वामीजीको वर्द्धमान भगवान्के विशेषणमें निवेशित कर भगवान् सदृशही नमस्कार भाव प्रदर्शित किया है । जैसे कि—

श्रीवर्द्धमानमकलङ्कमनिन्द्यवन्द्य—
पादारविन्दयुगलं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ।
भव्यैकलोकनयनं परिपालयन्तम्
स्याद्वादवर्त्म परिणौमि समन्तभद्रम् ॥

(अष्टशति)

श्रीवर्द्धमानमभिवन्द्यसमन्तभद्र-
मुद्भूतबोधमहिमानमनिद्यवाचम् ।
शास्त्रावताररचितस्तुतिगोचराप्त-
मीमांसितं कृतिरलंक्रियते मयास्य ॥

श्रेयः श्रीवर्द्धमानस्य परमजिनेश्वर-
समुदयस्य समन्तभद्रस्ये त्यादि,

(अष्टसहस्री)

अमोघवर्ष राजाके गुरु श्री जिनसेनजीने आपको महान् कवियोंका ब्रह्मा तथा चार प्रकारके कवियोंके मस्तकमें भूषणरूपसे विराजमान सामन्तभद्रीय यशको चूड़ामणिरत्नकी महनीयतामें निवेशित कर साधु साधकताका परिचय दिया है।

नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे ।
यद्वचो वज्रपातेन निर्भिन्नाः कुमताद्रयः ॥
कवीनां गमकानां च वादिनां वाग्मिनामपि ।
यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते ॥

(आदि पुराण.)

महाकवि श्री वादीभसिंहजीने इनको साक्षात् सरस्वती की मुख्य विहार-भूमिरूप वर्णनकर आपके अतिशय पांडित्यको प्रदर्शित किया है।

सरस्वतीस्वैरविहारभूमयः समन्तभद्रप्रमुखामुनीश्वराः ।
जयन्ति वाग्वज्रनिपातपाटिप्रतीपराद्धान्तमहीध्रकोटयः ॥

(गद्यचिंतामणि)

कवि श्री वीरनंदिजी महाराजने-पुरुषोत्तमके कंठको सुशोभित करनेमें आभूषणभूत मौक्तिकमालाके समान इनकी वाणीकी दुर्लभताका विशेषतासे वर्णन इस प्रकारलिखा है

गुणान्विता निर्मलवृत्तमौक्तिका
नरोत्तमैः कण्ठविभूषणीकृता ।
नहारयष्टिः परमेवदुर्लभा
समन्तभद्रादिभवा च भारती ॥

(चंद्रप्रभचरित्र)

श्री शुभचन्द्रचार्यजीने इनके वचनोंको अज्ञानान्धकार निवृत्तिके लिये सूर्य किरणोंके समान तथा इनके सामने दूसरोंको हास्यताके पात्र खद्योत समान कहा है।

समंतभद्रादिकवीन्द्रभास्वतां
स्फुरंति यत्रामलसूक्तिरश्मयः ।

व्रजन्ति खद्योतवदेव हास्यतां
न तत्र किं ज्ञानलवोद्धताजनाः ॥

(ज्ञानार्णव)

वसुनंदि सिद्धान्त चक्रवर्तिने समंतभद्र संम्बधि मतको तथा स्वामीजीको बड़े ही निर्बाध निर्दोष भद्र विशेषणोंद्वारा नमस्कार कर आपने अपनी बहुतही स्तुत्य मनोज्ञ उद्दारता दिखलाई है ।

लक्ष्मीभृत्परमं निरुक्तिनिरतं निर्वाणसौख्यप्रदं
कुज्ञानातपवारणाय विधृतं छत्रं यथा भासुरम् ।
सज्ज्ञानैर्नययुक्तिमौक्तिकरसैः संशोभमानं परं
वन्दे तद्धतकालदोषममलं सामन्तभद्रं मतम् ॥
समन्तभद्रदेवाय परमार्थविकल्पिने ।
समन्तभद्रदेवाय नमोस्तु परमात्मने ॥ (आप्तमीमांसा वृत्तिः)

मल्लिषेण प्रशस्तिमें—आपकी किस जगह कैसी अवस्था रही तथा आपके निर्भीकपांडित्यमें उत्कटवादीपना, और भस्मकसरीखे भयंकर रोगके नाश करनेमें दक्ष, पद्मावती सरीखेदेवताद्वारा सन्मानित, भक्तिविशिष्ट मंत्ररूपवचनोद्वारा चन्द्रप्रभ प्रतिबिंबको प्रगट कर असंभवतामें भी संभवताका प्रगट परिचय दिया, जैनमार्गकी सर्वत्र कल्याणकारी प्रभावना प्रगट की, पटना मालव सिंध ढाका आदि देश नगर विजेता, तथा जिनकी शक्तिप्रभावसे शक्ति प्रभव जिव्हाप्रभा भी कुंठित हो जाती थी, इत्यादि विशेषतासे विशेष वर्णन है । जैसेकि—

काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लाम्बुसे पाण्डुपिण्डः,
पुण्ड्रोण्ड्रे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राड् ।
वाराणस्यामभूवं शशधरधवलः पाण्डुरागस्तपस्वी,
राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥ १ ॥
वन्द्यो भस्मकभस्मसात्कृतपटुः पद्मावतीदेवता—
दत्तोदात्तपदः स्वमंत्रवचनव्याहूतचन्द्रप्रभः ।
आचार्यः स समन्तभद्रयतिवद् येनेह काले कलौ
जैनं वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्रं समन्तान्मुहुः ॥ २ ॥
पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालवढक्कसिन्धुविषये काञ्चीपुरे वैदिशे ।

प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं सङ्कटम्
वादर्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ६ ॥
अवटुतटमटति झटिति स्फुटपटुवाचाटधूर्जटेरजिव्हा
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति तव सदसि भूप कान्येषाम् ॥ ४ ॥
(श्रीमल्लिषेण प्रशस्ति)

स्वामीजीके विषयमें और भी अनेक विद्वानोंने भव्यभावुक बहुतही उद्गार प्रगट किये हैं वे सभी स्वामीजीके याथातथ्य गुणके प्रदर्शक हैं। इन सर्व प्रमाणोंसे यह सहजही समझमें आजाता है कि स्वामीजीमें एक अनोखीही विद्युतविद्वत्छटा थी ये स्वामी जैसे दार्शनिक तथा स्तुतिकार विद्वान हो गये हैं तैसेही दार्शनिक तथा स्तुतिकार सिद्धसेन दिवाकर भी दिगम्बराम्नायमें प्रतिभाशाली विद्वान् हो गये हैं । इनका समय विद्याभूषण एम्. ए. आदि पद धारक शतीश्चन्द्रजी वगैरःने ईसाकी ६ ठी शताब्दी निर्णीत कर लिखा है । तथा इनका यशोगान भी ईशाकी छट्टी शताब्दी के वाद आचार्य जिनसेनादि द्वारा मिलता है । ये आचार्य यद्यपि प्रतिभाशाली श्रीसमन्तभद्रके ही समान विद्वान थे परंतु जैसा शुभ स्तुतिगान स्वामी समंत भद्राचार्यजीका उनके पीछेके महर्षि तथा विद्वानों द्वारा कीर्तन किया गया बाहुल्यतासे मिलता है वैसा श्री सिद्धसेन दिवाकरजीका नहीं मिलता इस लिये यह स्पष्ट सिद्ध है कि उनके पीछेके कुछ एक विद्वान् उनकी श्रेणिमें गिने जानेपर भी उनके समान नहीं थे ।

इसका हेतु यही है कि स्वामीजी उत्सर्पिणीकालकी भविष्य चौवीसीमें भरत-क्षेत्रके तीर्थंकर होनेवाले हैं । जो प्राणी थोड़ेही समयमें तीर्थंकर होनेवाला है उसका माहात्म्य तथा उसकी विद्वत्ता अपूर्वही हो तो इसमें आश्चर्य भी किस वातका । स्वामीजी भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं इस विषयमें उभयभाषा कवि-चक्रवर्ति श्री हस्तिमल्लिजी इस प्रकार लिखते हैं ।

श्री मूलसंघव्योमेन्दुर्भारते भावि तीर्थकृत् ।
देशे समंतभद्राख्यो मुनिर्जीयात् पदर्द्धिकः ॥

इस पद्यसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आप मूलसंघके आचार्य थे । सेन-संघका जो आपको विद्वान् लोग लिखते हैं उसका हेतु यही है कि सेनसंघ मूल-

संघके चार भेदोंमेंसे एक भेद है। स्वामीजी उरगपुरके राजाके पुत्र थे और जन्मका खास नाम उनका शान्तिवर्मा था समन्तभद्र शायद इस नामका विशेषणरूपसे नाम हो, अथवा दीक्षाके बादमें समन्तभद्र नाम रखा गया हो। जो कि स्वामीजीके बोध करानेमें अभी यही प्रसिद्ध है।

ग्रंथलेखन शैली

आत्ममीमांसा तथा रत्नकण्डश्रावकाचारके देखनेसे मालूम पड़ता है कि आपकी ग्रंथलेखन शैली समुद्रको घड़ेमें भरनेकी कहावतको वास्तविक चरितार्थ करती है। उसी शैलीपर बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, चतुर्विंशतिस्तव, युक्त्यानुशासन आदि ग्रंथ भी हैं।

विषय पांडित्य

दर्शन, सिद्धान्त, साहित्य, व्याकरण, आदि सभी विषयमें आपका अपूर्व पांडित्य था क्योंकि दर्शन विषयके पांडित्यमें आपका आप्तमीमांसा ग्रंथ प्रसिद्ध ही हैं। सिद्धान्तमें जय धवला, तथा साहित्यमें चतुर्विंशतिस्तव है इस ग्रंथमें एकाक्षरी द्व्यक्षरी चित्रबन्धता आदि साहित्य कला द्वारा साहित्य विषयके पांडित्यकी हद्दरूप अद्भुत तथा अनोखी छटाको प्रदर्शित किया है। तथा व्याकरणमें भी समन्तभद्र नामका आपका किया हुआ व्याकरण है। जिसका कि उल्लेख पूज्यपाद स्वामीजीने प्रमाणभूततासे किया है।

संक्षेपमें हमें यही कहना है कि आपकी सर्व विषयहीमें अप्रतिहत शक्ति थी क्योंकि इनके ये सर्व ग्रंथ देखनेसे यह बात सहजही से समझमें आजाती है। तथा इस विषयमें विशेषतासे उसी समय पता लगेगा जब कि आपका ग्रंथराज गंधहस्त महाभाष्य जब कभी कहीं मिलै।

आपमैं भगवत विषयक स्तुति परायणता तथा शासनत्व है वह यद्यपि युक्तिमार्गकी प्रधानतासे है तथापि उसमें सर्वज्ञ मार्गका पूर्ण अनुगामीपन है।

शास्त्रकारोंने जो परीक्षा प्रधानताका वर्णन किया है वह भक्ति प्रधानताके साथ शक्तिकी पूर्णतामें ही कीया है। जिस जगह यह कारण सामीग्री सागोपाङ्ग है उस जगह स्वामी समन्तभद्रके समान स्तुतिके साथ स्वपरहितपना है। अन्यथामें सिर्फ आकाशके फूलों की कल्पना है।

---

१ उरगपुरसे शायद नागपुर लिया गया हो।

इनसर्व विषयोंसे पता चलता है कि स्वामीजीके पांडित्यमें हरएक विषयकी पूर्ण दक्षता थी।

श्रीमद् वादिराजसूरिने स्वामीके खास ३ ग्रंथ विषयक चमत्कृतिरूप पांडित्यमें कितनी उत्कृष्टि भक्तिके साथ कितनाही मनोज्ञ स्तुतिगान किया है

स्वामिनश्चरितं तस्य कस्य नो विस्मयावहम्।
देवागमेन सर्वज्ञो येनाद्यापि प्रदर्श्यते॥ १॥
अचिंत्यमहिमादेवः सोऽभिवन्धो हितैषिणा।
शब्दाश्च येन सिद्धयन्ति साधुत्वं प्रतिलंभिता॥ २॥
त्यागी स एव योगिन्द्रो येनाक्षय्यसुखावह :।
अर्तिने भव्यसार्थाय दिष्टो रत्नकरण्डकः॥ ३॥

(पार्श्वचरित्र प्रथमसर्ग)

इन तीनों श्लोकोंमें दर्शन, व्याकरण, आंचार, विषयक इन तीनग्रंथों द्वारा जो स्वामीजीका विशेष महत्व वर्णन किया गया है वह इन तीनों ग्रंथोंकी विशेष उत्कर्षतासे ही है। क्योंकि स्वामीके ये ग्रंथ रत्न ऐसे ही हैं।

समय

समय निर्णयमें बहुतसे विद्वानोंका मत है कि स्वामीजीने पहली या दूसरी विक्रम शताब्दिमें अपने चरणरजसे इस भारत वसुंधराको पवित्रित किया था।

विद्याभूषणादि अनेक पद धारक शतीश्चन्द्रजीनें उमास्वामीजीको ईसाकी प्रथम शताब्दिका निर्णय किया है।

स्वामी समन्तभद्राचार्यजीनें उमास्वामिकृत तत्वार्थमोक्षशास्त्र सूत्रपर गंधहस्त महाभाष्य नामकी एक विस्तृत टीका लिखी जिसका कि अनुष्टुप श्लोक प्रमाण चौरासी ८४००० हजार संख्यासे प्रख्यात है। यह टीका इस समय भाग्य दोषसे उपलब्ध नहीं है तथापि यह ग्रंथ अवश्य था और इसके प्रणेता स्वामीजी थे। इस विषयमें जिनका विपरीत विचार है वे वास्तवमें हवाई महल चिननेके समान विपरीत मार्गपर हैं। इस विषयका निर्णय पाठक इस भूमिकाके **ग्रंथ परिचय** विषयसे करें।

'चतुष्टयं समन्तभद्रस्य' इस व्याकरण जैनेन्द्रसूत्र द्वारा भगवान् स्वामी समन्तभद्रका नामोल्लेख श्री पूज्यपाद स्वामीजीने किया है। स्वामी पूज्यादजीका समय—कर्नाटक भाषा निबद्ध चरित्रसे शकाब्द साढ़े पांच सौ मिलता है। इस

परसे यह निर्णय हो जाता है कि या तो ये पहली शताब्दिके विद्वान् हैं या उसके पीछेके परंतु कुछ एक विद्वानोंने विक्रमकी १२५ वीं शताब्दिमें आपका होना निश्चित किया है इस परसे भी आपका पहली या दूसरी शताब्दिसे बाह्य समय नहीं जाता किंतु यही समय आजाता है। विशेष निर्णय अवकाश मिलने पर हम फिर कभी करैंगे—अन्यविद्वान् भी करैं तो जैनीयइतिहासमें विशेष सुभीता हो।

पं. जयचंद्रजी छावडा।

विक्रम १९०० की शताब्दिमें मान्यवर पं. टोडर मलजीके समान खंडेलवाल कुलभूषण पंडित जयचंद्रजी छावड़ा एक उत्तम प्रतिभाशाली विद्वान् हो गये है। उन्होंने अष्टसहस्री वगैरःके आधारसे इस आप्तमीमांसाकी जो देशभाषा की है वह बहुतही मानोज्ञ है वह न्यायचञ्चु प्रवेशी देशभाषा जानकारोंको भी बहुत उपयोगी है। इसी तरह आपने न्याय आध्यात्मस्वरूप अन्यग्रंथोंपर भी विशेष रूपसे टीकायें लिखी है जिसका कि व्योरे वार विवरण हम प्रमेयरत्नमालाकी भूमिकामें लिख चुकें हैं जो कि इस ग्रंथके साथही साथ इस ग्रंथमालासे प्रकाशित हो चुकी है। उक्त पंडितजी साहबने जो सर्वार्थसिद्धि–प्रमेयरत्नमाला वगैरःकी जो टीकायें तथा फुटकर वीनतियों वगैरःकी रचनायेंकी हैं उससे साफ जाहिर होता है कि पंडितजीका पांडित्य बहुतही देश समयानुकूल था। तथा वर्तमान भविष्यमें भी उसी प्रकार उपयोगिता रूपसे परिणत रहेगा। इन ग्रंथोंके देखनेसे पता लगता है कि पंडिजीने अनेक ग्रंथोंका स्वाध्याय व मनन किया था इसीसे आपमें विशेष ज्ञान विकाशकी विशेष छटा थी। पंडितजीने किन २ ग्रंथोंका विशेष रूपसे अध्ययन किया है इसका व्यौरा उन्होंने खुद अपने सर्वार्थसिद्धि देशवचनिका ग्रंथमें किया है। उससे पाठकगण खुद निर्णय कर सकते हैं तथा उपयोगिता होनेसे सावकाश मिलनेपर हम फिर कभी लिखेंगे।

पंडितजी ढुंढाहर देश जयपुर नगरके रहनेवाले थे। आपने इस ग्रंथकी टीका समाप्ति विक्रमसम्बत १८६६ चैत्र कृष्ण १४ के दिन की है।

आपके विषयका विशेष विवरण प्रेमेयरत्नमालाकी भूमिकामें हम लिख चुके हैं तथा सुभीता मिलनेपर सामिग्रीके मुआफिक अगारी अष्ट पाहुड वगैरःकी भूमिकामें भी लिखेंगे॥

ग्रंथपरिचय ।

यह आप्तमीमांसा (देवागम) नामका ग्रंथ अनुष्टुप श्लोक संख्यामें ११४ प्रमाण मात्र है परंतु आशयमें यह जलाशय (समुद्र) की उपमाको लिये हुए है । यद्यपि यह ग्रंथ भगवत् स्तुतिरूप है तथापि भगवत स्वरूपके ज्ञान विशेषमें साक्षात् एक अपूर्वही सिद्ध शक्ती है जिसके द्वारा कि भाग्यशाली पुरुषकी ईश्वरीय ज्ञानविषयक आकांक्षा पूर्णरूपमें पूर्ण हो जाती हैं । तथा विज्ञान कलामें इससे पूर्णिमाके पूर्णचंद्रकी शक्ति जागृत होती है इस ग्रंथकी वृत्ति, अष्टशती तथा अष्टशहस्री टीकाओंको पढ़कर यह सहज रूपसेही समझमें आ जाता है कि यह ग्रंथ स्तुतिरूप होकर भी दर्शन विषयका एक खानि स्वरूप प्रधान अंग है क्योंकि इसमें मताभास निराकरण(ताओं)के साथ असलीयत तत्वकी खूबी उस खूबीके साथ वर्णन की गई है कि जिसकी सादृश्यता शायदही कहीं हो । विषय प्रधानतासे यह ग्रंथ दश परिच्छेदोंमें विभक्त है । जिसका कि परिचय व्यौरे-वार विषय सूचीमें है । हमने पाठकोंके सुभीतेके लिये इस ग्रंथमें भूमिकाके साथ श्लोक सूची तथा विषय सूची भी लगा दी है । जो कि उपयोगितामें विशेष अवलंबन है ।

उपलब्ध ग्रंथोंमें स्वामीजीका यह ग्रंथ कुछ विशेषही महत्व तथा चमत्कृ-तिको लिये हुए है इसका मुख्य कारण यह है कि तत्वार्थ सूत्र सरीखे महत्वपूर्ण ग्रंथकी टीका जो गंधहस्त नामकी ८४००० अनुष्टुप श्लोकप्रमाणमें रची गई है वह बहुतही महत्वपूर्ण होगी और उसीका यह मंगलाचरण है । महत्व शाली ग्रंथका मंगलाचरणभी स्वामी सरीखे ग्रंथकर्ताओंद्वारा महत्वमें कुछ विशेषता लिये अवश्य ही होता है। क्योंकि लोकमें भी कहावत है कि क्षीरसमुद्रको अमृतो-त्पत्तिरूप सारता चतुर देवों ही द्वारा प्रदर्शित की गई । यद्यपि भाग्यकी खूबीसे ग्रंथराज श्रीगंधहस्तमहाभाष्य इस समय हम लोगोंके देखनेमें नहीं आताहै तथापि परंपरा श्रुतिसे तथा अनेक अकाट्य प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि स्वामीजीने गंध-हस्त महाभाष्यकी रचना की और यह ग्रंथ गंधहस्तमहाभाष्यका मंगलाचरण है इस विषयमें श्री विद्यानंदजी महाराज अपनी अष्टसहस्रीके मंगलाचरणमें इस प्रकार लिखते हैं ।

शास्त्रावताररचितस्तुतिगोचराप्त—
मीमांसितं कृतिरलंक्रियते मयास्य ॥

इस अर्द्ध पद्यसे स्पष्ट सिद्ध है कि किसी शास्त्रकी उत्पत्तिकी आदिमें यह ग्रंथ स्तुति स्वरूप मंगलाचरण है। अब किस ग्रंथका यह मंगलाचरण है इस विषयका प्रमाण श्री धर्म भूषणजी यति महाराजकी न्यायदीपिकामें स्पष्टरूपसे भलीभांति मिलता है—

'तदुक्तं स्वामिभिर्महाभाष्यस्यादावाप्तमीमांसा प्रस्तावे' सूक्ष्मांतरे त्यादि वह महाभाष्य कोंन है तथा किस ग्रंथका वह महाभाष्य है इस विषयमें उभय भाषाकवि चक्रवर्ति श्री हस्तिमल्लिजीकी विक्रान्त कौरवीय नाटककी प्रशस्ति इस प्रकार सूचित करती है

तत्वार्थसूत्रव्याख्यानगन्धहस्तिप्रवर्तकः
स्वामी समन्तभद्रोभूद्देवागमनिदेशकः ॥

सौ वर्ष पहलेके विद्वान् जयचंद्रजी साहबने भी इसी ग्रंथकी आदिमें सवैया-छंदद्वारा यही सूचित किया है। इन सब प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध होजाता है कि स्वामीजीने तत्वार्थसूत्रके ऊपर जो टीका गंधहस्ति नामकी रची है उसका यह ग्रंथ मंगलाचरण है। इस ग्रंथका असली महत्व तो अकलंक विद्यानंदी वसुनंदी आदि आचार्योंने समझा है। हम जो कुछ समझ सकते हैं तथा समझे हैं वह पूज्य इन आचार्योंके अष्टशती अष्टसहस्री आदि टीका ग्रंथोंका ही प्रताप है। और इस विषयमें पं. जयचंद्रजी छावड़ा भी देशभाषा जानकारोंके लिये विशेष उपकर्ता हैं।

विनीत—

रामप्रसाद जैन,

बम्बई।

श्लोकसूची ।

नं.	श्लोक	पृष्ठ.
१	देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः । मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ॥	७
२	अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादिमहोदयः । दिव्यः सत्यो दिवौकस्वप्यस्ति रागादिमत्सु सः ॥	८
३	तीर्थंकृत्समयानां च परस्परविरोधतः । सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरुः ॥	९
४	दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायिनात् । क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः ॥	११
५	सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा । अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥	१३
६	सत्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् । अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥	१४
७	त्वन्मतामृतबाह्यानां सर्वथैकान्तवादिनाम् । आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते ॥	१५
८	कुशलाकुशलंकर्म परलोकश्च न क्वचित् । एकान्तग्रहरक्तेषु नाथः स्वपरवैरिषु ॥	१६
९	भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात् । सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम् ॥	१७
१०	कार्यद्रव्यमनादिस्यात् प्रागभावस्य निह्नवे । प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ॥	१८
११	सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे । अन्यत्र समवायेन व्यपदिश्येत सर्वथा ॥	१९
१२	अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनां ।	२०

नं.	श्लोक	पृष्ठ.
	बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम् ॥	
१३	विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	२१
	अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥	
१४	कथंचित्ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत् !	२२
	तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥	
१५	सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादि चतुष्टयात् ।	२४
	असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥	
१६	क्रमार्पितद्वयाद्वैतं सहावाच्यमशक्तितः ।	२५
	अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भंगाः स्वहेतुतः ॥	
१७	अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि ।	२६
	विशेषणत्वात्साधर्म्यं यथा भेदविवक्षया ॥	
१८	नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मणि ।	२७
	विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया ॥	
१९	विधेयप्रतिषेध्यात्मा विशेष्यःशद्बगोचरः ।	२८
	साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया ॥	
२०	शेषभंगाश्च नेतव्या यथोक्तनययोगतः ।	२९
	न च कश्चिद्विरोधोस्ति मुनीन्द्र ? तव शासने ॥	
२१	एवं विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत् ।	३०
	नेति चेन्न यथाकार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः ॥	
२१	धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनंतधर्मणः ।	३१
	अङ्गित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्तानां तदङ्गता ॥	
२३	एकानेक विकल्पादावुत्तरत्रापि योजयेत् ।	३१
	प्रक्रियां भंगिनीमेनां नयैर्नयविशारदः ॥	
२४	अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुध्यते ।	३३
	कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात्प्रजायते ॥	
२५	कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत् ।	३४
	विद्याविद्याद्वयं न स्याद्बंधमोक्षद्वयं तथा ॥	
२६	हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद् द्वैतं स्याद्धेतुसाध्ययोः ।	३५

नं.	श्लोक	पृष्ठ.
	हेतुना चेद्विना सिद्धिर्द्वैतं वाङ्मात्रतो न किम् ॥	
	अद्वैतं न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना ।	३५
	संज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित् ॥	
	पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि पृथक्त्वादपृथक्तु तौ ।	३७
	पृथक्ते न पृथक्तं स्यादनेकस्थो ह्यसौ गुणः ॥	
२९	संतानः समुदायश्च साधर्म्यं च निरङ्कुशः ।	३९
	प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्वनिह्नवे ॥	
३०	सदात्मना च भिन्नं चेज्ज्ञानं ज्ञेयाद् द्विधाप्यसत् ।	३९
	ज्ञानाभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम् ॥	
३१	सामन्यार्था गिरोन्येषां विशेषो नाभिलप्यते ।	४०
	सामान्याभावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः ॥	
३२	विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	४१
	अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥	
३३	अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तुद्वयहेतुतः ।	४१
	तदेवैक्यं पृथक्त्वं च स्वभेदैः साधनं यथा ॥	
३४	सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथग्द्रव्यादिभेदतः ।	४२
	भेदाभेदाव्यवस्थायामसाधारणहेतुवत् ॥	
३५	विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनन्तधर्मिणि ।	४३
	यतो विशेषणस्यात्र नासतस्तैस्तदर्थिभिः ।	
३६	प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती ।	
	तावेकत्राविरुद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया ॥	
३७	नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रियानोपपद्यते ।	४६
	प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम् ॥	
३८	प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत् ।	४७
	ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद्बहिः ॥	
३९	यदि सत्सर्वथा कार्यं पुवन्नोत्पत्तुमर्हति ।	४८
	परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी ॥	
४०	पुण्यपापक्रिया न स्यात्प्रेत्यभावफलं कुतः ।	४९
	बंधमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः ॥	

नं.	श्लोक	पृष्ठ.
४१	क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसंभवः । प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम् ॥	४९
४२	यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्माजनि खपुष्पवत् । मोपादाननियामोऽभून्माश्वासः कार्यजन्मनि ॥	५०
४३	नहेतुफलभावादिरन्यभावादनन्वयात् सन्तानान्तरवन्नैकः सन्तानस्तद्वतः पृथक् ॥	५०
४४	अन्येष्वनन्यशद्बोऽयं संवृत्तिर्न मृषा कथम् । मुख्यार्थः संवृतिर्न स्याद्विना मुख्यान्न संवृत्तिः ॥	५१
४५	चतुष्कोटेर्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्तयोगतः । तत्वान्यत्वमवाच्यं च तयोःसंतानतद्वतोः ॥	५२
४६	अवक्तव्यचतुष्कोटिर्विकल्पोऽपि न कथ्यताम् । असर्वान्तमवस्तु स्यादविशेष्यविशेषणम् ॥	५२
४७	द्रव्याद्यन्तर्भावेन निषेधः संज्ञिनः सतः । असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधिनिषेधयोः ॥	५३
४८	अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात्सर्वान्तैः परिवर्जितम् । वस्त्वेवावस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात् ॥	५३
४९	सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषां किं वचनं पुनः । संवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमार्थविपर्य्ययात् ॥	५४
५०	अशक्यत्वादवाच्यं किमभावात्किमबोधतः । आद्यन्तोक्तिद्वयं न स्यात् किं व्याजेनोच्यतां स्फुटं ॥	५५
५१	हिनस्त्यनभिसन्धातृ न हिनस्त्यभिसन्धिमत् । बद्धयते तद्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते ॥	५६
५२	अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसा हेतुर्न हिंसकः । चित्तसंततिनाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्गहेतुकः ॥	५७
५३	विरूपकार्यारम्भाय यदि हेतु समागमः । आश्रयिभ्यामनन्योऽसावविशेषादयुक्तवत् ॥	५८
५४	स्कंधाःसन्ततयश्चैव संवृतित्वादसंस्कृताः । स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां न स्युः खरविषाणवत् ॥	५८
५५	विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	५९

नं.	श्लोक	पृष्ठ.
	अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥	
५६	नित्यं तत्प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा ।	६०
	क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषतः ॥	
५७	न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात् ।	६१
	व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत् ॥	
५८	कार्योत्पादः क्षयो हेतुर्नियमाल्लक्षणात्पृथक् ।	६२
	न तौ जात्यद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्यवत् ॥	
५९	घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम् ।	६३
	शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ॥	
६०	पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोस्ति दधिव्रतः ।	६४
	अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम् ॥	
	चतुर्थ परिच्छेद	
६१	कार्यकारणनानात्वं गुणगुण्यन्यतापि च ।	६५
	सामान्यतद्वन्यत्वं चैकान्तेन यदीष्यते ॥	
६२	एकस्यानेकवृत्तिर्न भागाभावाद्बहूनि वा ।	६६
	भागित्वाद्वास्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते ॥	
६३	देशकालविशेषेऽपि स्याद्वृत्तिर्युतसिद्धवत् ।	६६
	समानदेशता न स्यान्मूर्तकारणकार्ययोः ॥	
६४	आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातंत्र्यं समवायिनांम् ।	६७
	इत्ययुक्तः स संबंधो न युक्तः समवायिभिः ॥	
६५	सामान्यं समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तितः ।	६८
	अंन्तरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः	
६६	सर्वथानभिसम्बंधः सामान्यसमवाययोः ।	६८
	ताभ्यामर्थो न सम्बन्धस्तानित्रीणि खपुष्पवत् ॥	
६७	अनन्यतैकान्तेणूनां संघातेऽपि विभागवत् ।	६९
	असंहतत्वं स्याद् भूतचतुष्कं भ्रान्तिरेव सा ॥	
६८	कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिङ्गं हि कारणम् ।	६९
	उभयाभावतस्तत्स्थं गुणजातीतरच्च न ॥	

नं.	श्लोक	पृष्ठ.
६९	एकत्वेन्यतराभावः शेषाभावोऽविनाभुवः । द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृतिश्चेन्मृषैव सा ॥	७०
७०	विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् । अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यामिति युज्यते ॥	७०
७१	द्रव्यपर्याययोरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः । परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावतः ॥	७१
७२	संज्ञासंख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषतः । प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा ॥	७१
	पंचम परिच्छेद	
७३	यद्यापेक्षिकसिद्धः स्यान्नद्वयं व्यवतिष्ठते । अनापेक्षिकसिद्धौ च न सामान्यविशेषता ॥	७४
७४	विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् । अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥	७५
७५	धर्मधर्म्यविनाभावसिद्धत्यन्योन्यवीक्षया । न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारकज्ञापकाङ्गवत् ॥	७५
	षष्ठ परिच्छेद	
७६	सिद्धं चेद्धेतुतः सर्वं न प्रत्यक्षादितो गतिः । सिद्धं चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थमतान्यपि ॥	७६
७७	विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् । अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥	७७
७८	वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यतद्धेतुसाधितम् । आप्तेवक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम् ॥	७८
	सप्तम परिच्छेद	
७९	अन्तरंगार्थतैकांत बुद्धिवाक्यं मृषाखिलम् । प्रमाणाभासमेवास्ततप्रमाणादृते कथं ॥	७२
८०	साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता । न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञाहेतुदोषतः	८०
८१	बहिरङ्गार्थतैकान्ते प्रमाणाभासनिह्नवात् ।	८१

नं.	श्लोक	पृष्ठ.
	सर्वेषां कार्य सिद्धिः स्याद्विरुद्धार्थाभिधायिनाम् ॥	
८२	विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	८१
	अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥	
८३	भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिह्नवः ।	८२
	बहिःप्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते ॥	
८४	जीवशब्दः स बाह्यार्थः संज्ञात्वाद्धेतुशब्दवत् ।	८२
	मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च मायाद्यैः स्वैः प्रमोक्तिवत् ॥	
८५	बुद्धिशब्दार्थसंज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध्यादिवाचकाः ।	८४
	तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रशस्तत्प्रतिबिम्बिकाः ॥	
८६	वक्तुश्रोतृप्रमातृणां बोधवाक्यप्रमाः पृथक् ।	८५
	भ्रान्तावेव प्रमाभ्रान्तौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ ॥	
८७	बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं बह्यार्थे सति नासति ।	८६
	सत्यानृतव्यवस्थैवं युज्यतेऽर्थाप्त्यनाप्तिषु ॥	
	अष्टम परिच्छेद	
८८	दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरुषतः कथम् ।	८८
	दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत् ॥	
८९	पैरुषादेवसिद्धिश्चेत्पौरुषं दैवतः कथम्	८९
	पोरुषाच्चेदमोघं स्यात्सर्वप्राणिषु पौरुषम् ॥	
९०	विरोधानोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	९०
	अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥	
९१	अबुद्धि पूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः ।	"
	बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात् ॥	
	नवम परिच्छेद	
९२	पापं ध्रुवं परे दुःखात् पुण्यं च सुखतो यदि ।	९२
	अचेतना कषायौ च वध्येयातां निमित्ततः ॥	
९३	पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात् पापं च सुखतो यदि ।	९३
	वीतरागो मुनिर्विद्वाँस्ताभ्यां युञ्ज्यान्निमित्ततः ॥	
९४	विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	९४

नं.	श्लोक	पृष्ठ.
	अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥	
९५	विशुद्धिसंक्लेशाङ्गंचेत् स्वपरस्थं सुखासुखम् !	
	पुण्यपापाश्रवौ युक्तौ न चेद्व्यर्थस्तवार्हतः ॥	
	दशम परिच्छेद	
९६	अज्ञानाच्चेध्रुवो बंधो ज्ञेयानंत्यान्नकेवली ।	९६
	ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोन्यथा ॥	
९७	विरोधान्नोयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	९६
	अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमितियुज्यते ॥	
९८	अज्ञानान्मोहतो बन्धो नाज्ञानद्वीतमोहतः ।	९७
	ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षः स्यादमोहान्मोहितोऽन्यथा ॥	
९९	कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः ।	९८
	तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्धयशुद्धितः ॥	
१००	शुद्धयशुद्धी पुनः शक्ती ते पाक्यापाक्यशक्तिवत् ।	९९
	साध्यनादी तयोर्व्यक्ती स्वभावोऽतर्कगोचरः ॥	
१०१	तत्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत्सर्वभासनम् ।	१०४
	क्रमभावि च यज्ज्ञानं स्याद्वादनयसंस्कृतम् ॥	
१०२	उपेक्षाफलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः ।	१०४
	पूर्वं वा ज्ञान नाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥	
१०३	वाक्योष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम् ।	१०५
	स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तव केवलिनामपि ॥	
१०४	स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः	१०७
	सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥	
१०५	स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्वप्रकाशने ।	१०८
	भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥	
१०६	सधर्मेणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः ॥	१०९
	स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नयः ॥	
१८७	नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः ।	११०
	अविभ्रग्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकममेकधा ॥	

नं.	श्लोक	पृष्ठ.
१०८	मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः । निरपेक्षा नयाः मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥	१११
१०९	नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा । तथान्यथा च सोऽवश्यमविशेषत्वमन्यथा ॥	११२
११०	तदतद्वस्तुवागेषा तदेवेत्यनुशासती । नसत्या स्यान्मृषावाक्यैः कथं तत्वार्थदेशना ॥	११३
१११	वाक्स्वभावोन्यवागर्थप्रतिषेधनिरङ्कुशः । आह च स्वार्थसामान्यं तादृग्वाच्यं खपुष्यवत् ॥	११४
११२	सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शद्बार्थो मृषा हि सा । अभिप्रेतविशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्यलाञ्छनः ॥	११५
११३	विधेयमीप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्याविरोधि यत् । तथैवादेयहेयत्वमिति स्याद्वादसंस्थितिः ॥	११६
११४	इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छिता । सम्यङ्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥	११७
११५	जयति जगति क्लेशावेशप्रपञ्चहिमांशुमान् । विहितविषमैकान्तध्वान्तप्रमाणनयांशुमान् । यतिपतिरजो यस्या धृष्णान्मताम्बुनिधेर्लवान् स्वमतमतयस्तीर्थ्या नानापरे समुपासते ॥	११७

इति ।

विषयसूची

नंबर.	विषय.	पत्र.
	प्रथम परिच्छेद ॥ १ ॥	
१	पं. जयचंद्रजी छावड़ा विरचित मंगलाचरण.	१
२	ग्रंथवननेका सम्बंध.	२
३	भाषा वचनिका वननेका संबंध, नम्रनिवेदन प्रार्थना पं. जयचंद्रजीकृत पीठिका.	३
४	देवोंका आना आदि विभूतिहेतु द्वारा भगवान स्तुति करने योग्य नहीं, क्योंकि ये हेतु आप्तता सर्वज्ञताके साधक नहीं–इत्यादि.	७
५	भगवत् वीतराग सर्वज्ञताविषयक अनुमान.	११
६	सर्वज्ञ वीतरागपना अरहंतमेंही है.	१४
७	आप्तता अन्यमें नहीं.	१५
८	भावाभावपक्षका एकान्त निषेध तथा उसके भाव वगैरः सात भंग विकल्प.	१७
९	भावाभावके सातों पक्षका अनेकान्त स्वरूपस्थापन.	२२
१०	द्वितीयादि परिच्छेदमें उपर्युक्तपक्षोंके सप्त भंग करनेका विधान.	
	द्वितीय परिच्छेद ॥ २ ॥	
११	अद्वैतपक्षके एकान्तका निषेध.	३३
१२	पृथक्त्व एकान्तका निषेध,	३७
१३	अद्वैत और पृथक्त्व इन दोनों पक्षोंका तथा अवक्तव्य पक्षका निषेध.	४१
१४	उपर्युक्त पक्षोंका अनेकान्त धर्मकर स्थापन.	४१
	तृतीय परिच्छेद ॥ ३ ॥	
१५	नित्यत्व एकान्तपक्षका निषेध.	४६
१६	क्षणिक एकान्तपक्षका निषेध.	४९
१७	नित्यत्व क्षणिक इन दोनों पक्षोंके एकान्त और अवक्तव्यका निषेध.	५९
१८	अनेकान्त धर्मकर इन सब पक्षोंकी स्थापना.	६०
	चतुर्थ परिच्छेद ॥ ४ ॥	
१९	भेद एकान्तपक्षका निषेध.	६५
२०	अभेद एकान्तपक्षका निषेध.	६९

नंबर.	विषय	पत्र.
२१	भेदाभेद एकान्त और अवक्तव्य पक्षका निषेध.	७०
२२	अनेकान्त धर्मका स्थापन.	७१
	पंचम परिच्छेद ॥ ५ ॥	
२३	धर्म और धर्मीकी अपेक्षाअनपेक्षपक्षद्वारा एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन.	७४
	छट्ठा परिच्छेद ॥ ६ ॥	
२४	हेतु और आगमविषयक एकान्तपक्ष निषेध अनेकान्तधर्मस्थापन.	७८
	सप्तम परिच्छेद ॥ ७ ॥	
२५	अन्तरङ्ग बहिरङ्ग तत्वविषयक एकान्तका निषेध.	७८
२६	अन्तरङ्ग बहिरङ्ग तत्वविषयक अनेकान्तकी सिद्धि.	८२
	अष्टम परिच्छेद ॥ ८ ॥	
२७	दैव पुरुष विषयक एकान्त निषेध. और अनेकान्त स्थापन.	८८
	नवम परिच्छेद ॥ ९ ॥	
२८	पुण्य पाप बंधविषयक एकान्त निराकरण अनेकान्त समर्थन.	९२
	दशम परिच्छेद ॥ १० ॥	
२९	अज्ञानसे बंध और अल्पज्ञानसे मोक्ष ऐसे एकान्त विषयक मतका निषेध, और जिस अनेकान्त विधिसे बंधमोक्ष हो सकता है उसका विधान.	
३०	संसारकी उत्पत्तिका क्रम.	९९
३१	प्रमाणका स्वरूप, संख्या, विषय, फल, इन चारोंका कथन	१०१
३२	स्यात् पदका स्वरूप,	१०५
३३	स्यात् पद और केवलज्ञानकी समानता.	१०८
३४	नयकी हेतुवादकताका स्वरूप	
३५	प्रमाणविषयक अनेकान्तात्मवस्तुका स्वरूप तथा उसका दृढीकरण.	११०
३६	प्रमाण नयके वाक्यका स्वरूप.	११२
३७	स्याद्वादकी स्थिति.	११५
३८	ग्रंथवनानेका प्रयोजन	११७
३९	पं. जयचंद्र जी द्वारा कियागया अन्तिम मंगल नमस्कार, प्रशस्ति.	११८
४०	भाषा वचनिकाका निर्माण समय	११८

इति

नमः सिद्धेभ्यः।

श्रीसमन्तभद्राचार्य विरचित

आप्त-मीमांसा।

देवागमापरनाम।

पं० जयचंदजी विरचित हिन्दीटीकासहित।

अथ देवागमनाम स्तवकी देशभाषामयवचनिका लिखिये हैं।

दोहा।

वृषभ आदि चउवीस जिन, बंदौं शीस नवाय।
विघनहरन मंगलकरन, मन वांछित फलदाय॥ १॥
सकलतत्वपरकास कर, स्याद्वादमयसार।
शब्द-ब्रह्म सांचे नमौं, जिनवचन हितकार॥ २॥
वृषभसेनकूं आदि लें, अंतिम गौतमस्वामि।
चउदहसै त्रेपन नमौं, गणधर मुनिवर नामि॥ ३॥

पंचमकालसुआदिमैं, केवलज्ञानी तीन ।
श्रुतकेवलि हू पंच जे, नमौं कर्ममल छीन ॥ ४ ॥
तत्वारथशासन कियो, उमास्वामि मुनि-ईश ।
सदा तासके चरन युग, नमौं धारि कर शीस ॥ ५ ॥

सवैया ३१ सा ।

स्वामि जो समंतभद्र तत्वारथशासनकी महाभाष्य रची ताकी आदिमैं विचारकैं । परम-आप्त-मीमांसा देवागमनाम स्तुति स्याद्वादसाधनमैं भाषी विस्तारकैं । अष्टशती वृत्ति ताकी कीनी अकलंकदेव ताकूं विद्यानंदसूरि भले मन धारिकैं । अलंकाररूप वरनी हजार आठ ऐसे तीन मुनिराय पाय नमौं मद छारिकैं ॥ ६ ॥

दोहा ।

आगमकी उत्पत्तिको, कारन आप्तविचार ।
ताहीतैं है ज्ञानवर, नमनैं योग्यनिहार ॥ ७ ॥
कियो नमन अब करतहूं, देवागम थुति देषि ।
देशवचनिका तासकी, टीका आशय पेषि ॥ ८ ॥

ऐसैं मंगलके अर्थि इष्टकूं नमस्कार किया । अब शास्त्रकी उत्पत्ति तथा शास्त्रका ज्ञान आप्ततैं ही होय यातैं शास्त्रके मूलकर्ता तौ परमभट्टारक श्रीऋषभदेव आदि वर्द्धमानपर्यंत चउवीस तीर्थंकर चतुर्थकालमैं भये। अर तिनकी दिव्यध्वनितैं लेय गणधरीननैं द्वादशांग श्रुतरूप रचना करी तिनकी परिपाटी अनुसार इस पंचमकालमैं भये तिननें शास्त्रोंकी प्रवृत्ति करी ऐसैं शास्त्रनिकी उत्पत्ति तथा शास्त्रनिके ज्ञानके कारण आप्त ही हैं। ते शास्त्रकी आदिविषैं नमस्कार जोग्य हैं । ऐसैं जानि तिनकूं नमस्कारकरि देवागमनाम स्तोत्रकी देशभाषामयवचनिका लिखूं हूं। ताका संबंध ऐसा—जो प्रथम तौ उमास्वामिमुनिननैं तत्वार्थसूत्र दशाध्यायरूप रच्या ताकी गंधहस्तिनामा महाभाष्य श्रीस्वामिसमंतभद्रनैं रची, ताकी आदिमैं आप्तकी परीक्षारूप

यह देवागमनामा स्तवन किया, सो याका देवागम ऐसा तौ आदि अक्षरके संबंधतैं नाम है। अर याका सार्थक नाम आप्तमीमांसा है। मीमांसा परीक्षाकूं कहिए हैं। बहुरि इस स्तवनकी अकलंकदेव आचार्यनैं वृत्ति करी ताके श्लोक आठसै हैं, ताकूं अष्टशती ऐसा नाम कहिये हैं। बहुरि तिस अष्टशतीका अर्थ लेय श्रीविद्यानान्दिनाम आचार्यनैं अष्टसहस्रीनामा याकी अलंकाररूप टीका रची है। सो यह प्रकरण न्यायपद्धतिका है। इसका अर्थ व्याकरण न्यायशास्त्रके पढ़ेनिकूं भासै है सो ऐसै पढ़नेवाले तथा इनकी गुरु-आम्नायकी विरलता हो गई है ताकरि अर्थके समझनेवाले विरले हैं। मेरे कछू इनका बुद्धि सारू बोध भया तब विचार भया-जो सम्यग्दर्शनका प्रधानकारण आप्त, आगम, पदार्थका जानना है अर आप्तकी परीक्षा इन ग्रंथनिमैं है। सो आप्तका यथार्थ स्वरूप इन ग्रंथनितैं प्रकट होय तौ बड़ा उपकार होय, अल्पबुद्धि हू आप्तका स्वरूप यथार्थ समझै तौ ताके वचन आगम है, तथा तिस आगममैं पदार्थका स्वरूप वर्णन है ताकूं समझैं सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय ऐसैं विचारि या स्तवनकी देशभाषामय वचनिका संक्षेप अर्थरूप अष्टसहस्री टीकाका आशय लेय कछू लिखूं हूं सो भव्य जीव बांचियो, पढ़ियो, धारियो, यातैं आप्तका यथार्थ स्वरूप जानि श्रद्धान दृढ़ कीजियो। अर अर्थमैं कहूं हीनाधिक लिखूं तो विशेष बुद्धिवान् मूल श्लोक तथा टीका देखि शुद्धकरि बांचियो, मेरी अल्पबुद्धि जानि हास्य मति करियो। सत्पुरुषनिका स्वभाव गुणग्रहण करणेंका होय है। सो दोष देखि क्षमा ही करैं ऐसैं मेरी परोक्ष प्रार्थना है। इस देवागम स्तोत्रकी पीठका ऐसैं हैं—

यामैं परिच्छेद दश हैं। तिनमैं आदिका प्रथम परिच्छेदमैं कारिका (श्लोक) तेईस हैं। तिनमैं आदिमैं देवागम इत्यादि तीन श्लोकमैं

तौ भगवान् महान् स्तुतियोग्य ऐसैं हेतुनितैं नाहीं हैं ऐसैं कह्या है। बहुरि दोषावरण इत्यादि दोय श्लोकनिमैं भगवान् सर्वज्ञ वीतराग हैं ऐसा अनुमान किया है। बहुरि स त्वमेवासि इत्यादि एक श्लोकमैं ऐसैं सर्वज्ञ वीतराग तुम अरहंत ही हो ऐसैं कह्या है। बहुरि त्वन्मता इत्यादि दोय श्लोकमैं अन्य आप्त नाहीं हैं ऐसा कह्या है। ऐसैं आठ श्लोकमैं तौ पीठबंध है। बहुरि आगैं भावाभावपक्षका एकांतके निषेधका पांच श्लोक है। तामैं भाव १, अभाव २ अर भावाभाव ३, अवक्तव्य ४, भावावक्तव्य ५, अभावावक्तव्य ६, भावाभावावक्तव्य ७, ऐसैं विधि-निषेधके सात भंगकरि दूषण दिखाया है। बहुरि आगैं नव श्लोकनिमैं भावाभावकी सातूं पक्षका अनेकांत रूप स्थापन है। बहुरि एक श्लोकमैं अगले परिच्छेदनिमैं इनि पक्षनिके सप्तभंग करनेकी सूचनिका है। ऐसैं प्रथम परिच्छेद समाप्त किया है॥ १॥

आगैं द्वितीय परिच्छेदमैं एकत्वानेकत्व पक्षका तेरा श्लोकनिमैं वर्णन हैं। तहाँ चार श्लोकनिमैं अद्वैत पक्षके एकान्तका निषेध है। बहुरि चारि श्लोकनिमैं प्रथक्त्व-एकान्त पक्षका निषेध है। बहुरि एक श्लोकमैं दोउ पक्ष अर अवक्तव्यपक्षका निषेध है। बहुरि चार श्लोकनिमैं इनि पक्षनिके अनेकान्तकरि स्थापन है। ऐसैं द्वितीय परिच्छेद समाप्त किया है॥ २॥

आगैं तृतीय परिच्छेद नित्यानित्य पक्षका है तामैं श्लोक चोईस हैं। तहां चार श्लोकनिमैं तौ नित्यत्व-एकान्त पक्षका निषेध है। बहुरि चौदह श्लोकनिमैं क्षणिक-एकान्त पक्षका निषेध है। बहुरि एक श्लोकमैं दोउकी पक्ष अर अवक्तव्य पक्षका निषेध है। बहुरि पांच श्लोकनिमैं अनेकान्तकरि इन पक्षनिका स्थापन है। ऐसैं तृतीय परिच्छेद समाप्त किया है॥ ३॥

आगैं चतुर्थ परिच्छेद भेदाभेद पक्षका है। तामैं श्लोक बारह हैं। तिनमैं छह श्लोकनिमैं तौ भेद-एकान्त पक्षका निषेध है। बहुरि तीन श्लोकनिमैं अभेद पक्षका निषेध है। बहुरि एक श्लोकमैं दोउकी पक्ष अर अवक्तव्य पक्षका निषेध है। बहुरि दोय श्लोकनिमैं अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं चतुर्थ परिच्छेद समाप्त किया है ॥४॥

आगैं अपेक्षा—अनपेक्षाकी पक्षका पंचम परिच्छेद है तामैं तीन श्लोकनिमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं पांचमां परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ५ ॥

आगैं हेतु आगमकी पक्षका छठा परिच्छेद है तामैं तीन श्लोक हैं। तिनमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं छठा परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ६ ॥

आगैं अंतरंग बहिरंग तत्वकी पक्षका सातमां परिच्छेद है। तामैं नव श्लोक हैं। तहां च्यारि श्लोकनिमैं तौ एकान्तका निषेध है। अर पांच श्लोकनिमैं अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं सातमां परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ७ ॥

आगैं दैव पौरुष की पक्षका आठमां परिच्छेद है तामैं श्लोक च्यारमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं आठमां परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ८ ॥

आगैं पुण्य पापके बंधकी रीतिका नवमां परिच्छेद है। तामैं श्लोक च्यारमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं नवमां परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ९ ॥

आगैं दशमां परिच्छेदमैं उगणीस श्लोक हैं तिनमैं तीन श्लोकनिमैं तो अज्ञानतैं बंध अर अल्पज्ञानतैं मोक्ष ऐसा एकान्तका निषेध करि अर बंध मोक्ष जैसैं होय तैसैं अनेकान्ततैं स्थापन किया है।

बहुरि दोय श्लोकनिमैं संसारकी उत्पत्तिका क्रम कह्या है। बहुरि पीछैं दोय श्लोकनिमैं प्रमाणका स्वरूप, संख्या, विषय, फल इन चारानिका वर्णन करि अर दोय श्लोकनिमैं स्यात्पदका स्वरूप कह्या है। पीछैं एक श्लोकमैं स्याद्वादकूं अर केवलज्ञानकूं कथंचित् समान दिखाया। पीछैं नयका हेतुरूप स्वरूप एक श्लोकमैं कहि अर प्रमाणका विषय वस्तुका स्वरूप एक श्लोकमैं कह्या; पीछैं एक श्लोकमैं याहीकूं दृढ़ किया, पीछैं प्रमाणनयके वाक्यका स्वरूप चारि श्लोकमैं कह्या। पीछैं एक श्लोकमैं स्याद्वादकी स्थिति कही। अर पीछैं एक श्लोकमैं ग्रंथ कहनेका प्रयोजन कहि उगणीस श्लोकरूप परिच्छेद समाप्त किया है। सर्व श्लोक एक सौ चौदह भये ऐसैं दश परिच्छेद रूप पीठका है ॥ १० ॥

इति पीठिका।

अथ अष्टसहस्रीनाम टीकाका कर्त्ता श्रीविद्यानंन्दिनामा आचार्य कहै है—जो यह देवागमनामा शास्त्र है सो कैसा है? शास्त्रका प्रारम्भ कालविषैं रची जो स्तुति ताकैं गोचर जो आप्त ताकैं गुणानिका अतिशयकी परीक्षा स्वरूप है। सो ऐसैं मोक्षशास्त्र जो तत्त्वार्थसूत्र ताकी आदिविषैं शास्त्रकी उत्पत्ति तथा शास्त्रका ज्ञानका कारणपणांकरि तथा मंगलकैं अर्थि मुनिननैं भगवान आप्तका स्तवन ऐसैं किया—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥ १ ॥

याका अर्थ—मोक्षमार्गके प्राप्त करनेवाले कर्मरूपपर्वतके भेदनेवाले समस्त तत्त्वके जाननेवाले ऐसे आप्तको मैं तिनके गुणनिकी प्राप्तिकै अर्थि वंदौं हूं। ऐसे अतिशयरहित गुणनिकरि स्तवन किया सो भगवान आप्त मानूं समंतभद्राचार्य्यकूं साक्षात पूछया जो हे समं-

तभद्र ! यह मुनिननैं हमारा स्तवन निरतिशय गुणनिकरि किया सो हमारे देवनिका आगम आदि विभूति पाइये है, ऐसे अतिशयनिकरि हम महान हैं—स्तवन करने जोग्य हैं । ऐसे अतिशयसहित गुणनिकरि हमारा स्तवन क्यों न किया । ऐसे पूछैं तैं समंतभद्राचार्य भगवानकूं कहैं हैं— कैसे हैं समंतभद्राचार्य्य ? मोक्षका मार्गस्वरूप जो अपनां हित ताकूं चाहते जे भव्यजीव तिनकै सम्यक् अर मिथ्या जो उपदेशका विशेष ताका ज्ञानकै अर्थि आप्तकी परीक्षाकूं करते हैं । बहुरि कैसे हैं ? श्रद्धा अर गुणज्ञता इन दोऊनतैं प्रयुक्त है मन जाका ऐसे हैं। ऐसैं उत्प्रेक्षा अलंकाररूप वचन है । ऐसैं भगवान आप्तके साक्षात् पूछैं मानूं समंत-भद्राचार्य्य कहैं हैं—

देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः ।
मायाविष्वपि दृश्यंते नातस्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! तुमारे देवनिका आगमन आदि तथा आकाश-विषैं गमन आदि तथा चामरछत्रादि विभूति पाइये हैं इस हेतुतैं तौ हमारे मुनिनकै तुम महान् स्तुति करनें योग्य नाहीं हो, जातैं यह विभूति तौ मायावी जे मस्करी आदिक इन्द्रजालवाले तिनविषैं भी पाइये है । यातैं जो आज्ञा प्रधानी हैं ते देवनिका आगम आदि विभूति अपनां परमेष्ठी परमात्माका चिह्न मानूं अर हम सारखे परीक्षा प्रधानी तौ ऐसे चिह्नतैं परमेष्ठी स्तुति करनें योग्य नाहीं मानैं हैं । जातैं यह स्तव आगमके आश्रय है । बहुरि या स्तवनका हेतु देवनिका आगमादि विभूतिसहितपणां है सो यह हेतु भी आगम-आश्रित है । प्रतिवादीकै तौ प्रमाणसिद्ध ही नाहीं है, पैला साक्षात् देवागमादि देख्या बिना कैसैं मानैं । अर आगमप्रमाणवादीकै भी मायावी आदि विपक्षमैं वर्तनेंतैं व्यभिचारी है । साध्यकूं कैसैं साधै । बहुरि आगम

प्रमाणवादी कहै—जो सांचा देवनिका आगमआदि विभूतिसहितपणां भगवानकै है ते मायावीनिविषैं नाहीं तातैं हेतु व्यभिचारी नाहीं, तौ तहां भी ऐसा उत्तर जो सांचे विभूति भगवानकै प्रत्यक्ष अनुमान तैं सिद्ध भये नाहीं अर आगमतैं सिद्ध किये माने तो आगमाश्रित ही भया तातैं इस हेतुतैं स्तुति करनें योग्य भगवान आप्त सिद्ध होय नाहीं ॥ १ ॥

आगैं फेरि मानूं भगवान पूछै है—जो अंतरंग अर बाह्य शरीरादि महोदय हमारे हैं तैसा अन्यकै नाहीं, सांचा है यातैं हम महान स्तुति करनें योग्य हैं तातैं तैसैं स्तवन क्यों न किया, ऐसैं पूंछैं मानूं फेरि आचार्य कहैं हैं—

अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादिमहोदयः ।
दिव्यः सत्यो दिवौकस्स्वप्यस्ति रागादिमत्सु सः ॥ २ ॥

अर्थ—अध्यात्म कहिए आत्माश्रित-शरीराश्रित अंतरंग शरीर आदिका महान् उदय मल पशेव रहितपणां आदिक, बहुरि बाह्य देवनिकरि किया गंधोदकवृष्टि आदिक ये सांचे मायावीनिविषैं नाहीं पाइये, बहुरि दिव्य है चक्रवर्त्यादिक मनुष्यनिकै ऐसे न पाइये। सो ऐसे हेतुतैं भी भगवान आप्त तुम हमारे स्तुति करनें योग्य नाहीं हो जातैं यहु अंतरंग बहिरंग सांचा महोदय यद्यपि पूरणादिक इन्द्रजालीनिविषैं न पाइये है तौऊ कषाय रागादिकसहित स्वर्गके देवतिनिविषैं पाइये हैं तातैं हेतु व्यभिचारी है । इस हेतुतैं भी भगवान् परमात्मा हैं ऐसैं नाहीं स्तुतिगोचर कीजिए हैं । इहाँ भी कहै—जो भगवानके घातिकर्मके नाशतैं जैसा विग्रहादिमहोदय है तैसा रागादिसहित देवनिविषैं नांहीं है ? तहाँ भी पूर्वोक्त ही उत्तर—जो भगवानकै घातिकर्म नांशतैं उपज्या ऐसैं साक्षात् दीखै नाहीं तातैं यह भी स्तवन तथा हेतु

आगमाश्रित ही है । इहां कहै—जो प्रमाणसंप्लवके माननेंवाले अनेक प्रमाणतैं सिद्ध मानैं हैं । इहाँ आगम प्रमाणतैं सिद्ध भया सोई आगमाश्रित हेतुजनित अनुमानतैं सिद्ध भया यामैं दोष कहा ? ताकूं कहिए—ऐसैं प्रमाणसंप्लव इष्ट नाहीं है, प्रयोजन विशेष होय तहाँ प्रमाणसंप्लव इष्ट है । पहलैं प्रमाण सिद्ध प्रामाण्य आगमतैं सिद्ध भया तौऊ ताका हेतुकूं प्रत्यक्ष देखि अनुमानतैं सिद्ध करै पीछैं ताकूं प्रत्यक्ष जाणैं तहाँ प्रयोजन विशेष होय है ऐसैं प्रमाणसंप्लव होय है । केवल आगमहीतैं तथा आगमाश्रित हेतुजनित अनुमानतैं प्रमाण कहि काहेकूं प्रमाणसंप्लव कहनां ऐसैं इस विग्रहादिक महोदयतैं भी भगवान परमात्मा नाहीं मानैं हैं ॥ २ ॥

आगै फेरि मानूं भगवान् पूछै है जो हमारा तीर्थकृत संप्रदाय है—मोक्ष मार्गरूप धर्मतीर्थ हम चलावैं हैं इस हेतुतैं हम महान् स्तुति करनें योग्य हैं । ऐसैं पूछैं फेरि आचार्य्य साक्षात् ही कहै है ।—

तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधतः ।
सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरुः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! तीर्थ कहिये जाकरि तरिये ऐसा धर्ममार्ग ताकूं करै ते तीर्थकृत् तिनके समय कहिये मत तथा आगम तिनकै परस्पर विरोध है तातैं सर्वहीकै आप्तपणां होइ नांही । तिनमैं कोई एक गुरु महान् स्तुति करनें योग्य होइ ।

भावार्थ—हे भगवन् आप्त ! तुमारै तीर्थकरपणां हेतुतैं महान्पणां साधिये तौ यह तीर्थकरपणां प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणतैं तौ सिद्ध होइ नांही । प्रत्यक्ष दीखै नांही तथा ताका लिंग दीखै नांही । अर आगमतैं साधिये तौ पूर्ववत् आगम-आश्रय ठहरै । बहुरि यहु हेतु व्यभिचारी है तातैं इन्द्रादिकविषैं असंभवी है तौऊ बौद्धादि अन्यमती

हैं ते सर्व अपनें अपनेंकूं तीर्थंकर मानै हैं यातैं सर्व ही महान् ठहरै हैं। बहुरि ते सर्वज्ञ हैं नांही जातैं परस्परविरुद्ध आगम कहै हैं। जो विरुद्ध न कहै तौ तिनकै मतभेद काहेकूं होइ। तातैं तीर्थंकरपणां हेतु है सो काहूहीकै महानूपणांकूं साधै नांही है।

इहां मीमांसकमती बोलै है—जो याहीतैं ऐसा आया जो पुरुष तौ कोई भी सर्वज्ञ महान् स्तुति करवे योग्य नांही जे कल्याणके अर्थि हैं तिनकै वेद ही कल्याणका उपदेशका साधन है? ताकूं भी ऐसैं ही कहनां—जो वेद आप ही तौ आपके अर्थकूं कहै नांही। वेदका अर्थ पुरुष ही करै है। तिनकै भी परस्पर विरोध ही देखिये हैं। तहां भट्टके सम्प्रदायी तौ वेदका वाक्यार्थ भावनाकूं मानै है, प्रभाकरके सम्प्रदायी नियोगकूं वाक्यार्थ मानै हैं, वेदान्तके सम्प्रदायी विधिकूं वाक्यार्थ मानै हैं। तिनकै परस्पर विरोध है। इनका स्वरूप विशेषकरि अष्टसहस्रीमैं वर्णन है तथा विस्तारसूं दिखाया है तहांतैं जाननां।

बहुरि इहां नास्तिकवादी चार्वाक तथा शून्यवादी कहै है—जो कछू वस्तु ही सत्यार्थ नांही तब काहेका आप्त अर काहेकूं परीक्षाका विवादका प्रयास करिये? ताकूं कहिये—जो वस्तु नांही है ऐसा भी निश्चय कैसैं करिये, तू नास्तिक तथा शून्यका कहनेंवाला किछू वस्तु ही नांही तौ तेरी कही कौन मानेगा अर तू वस्तु है तौ तैसैं ही सर्व वस्तु है। (तथा सर्व वस्तुका जाननेवाला सर्वज्ञ आप्त है।) तहां वस्तुका स्वरूप कोऊ कैसैं मानैं हैं कोऊ कैसैं मानैं हैं। तहां परीक्षा भी करी चाहिए। बहुरि परीक्षा होइ है सो प्रमाणरूप ज्ञानतैं होइ है। बहुरि प्रमाणरूप ज्ञान है सो सर्वथा सांचा ज्ञान सर्वज्ञका है सो सर्वज्ञ अदृष्ट है ताका निश्चय किया चाहिए। अर अल्पज्ञकै निश्चय होइ, सो अपनें ज्ञानहीकै आश्रय होय सो साधक प्रमाण अर बाधकका जैसैं निश्चय

होइ, वादी प्रतिवादी निवधि निश्चय करै कोइ प्रकार बाधा नांही आवै तैसैं निश्चय करनां सो परीक्षा है।

बहुरि इहां मीमांसक कहै—जो अल्पज्ञकी तौ सिद्धि होइ है अर सर्वज्ञकी सिद्धि नांही। ताकूं कहिए—जो अल्पज्ञ आत्माकी सिद्धि है तौ ताकै निषेधकूं इस श्लोकके चौथे पदका अर्थ ऐसैं करना जो "कश्चिदेव भवेद्गुरुः" कहिए कौन गुरु है? यह चित् है—ज्ञान रूप आत्मा है सोई गुरु है—महान् है। जातैं इस चैतन्य आत्माकै अन्य पुद्गलके संबंधतैं ज्ञानावरण आदिक कर्म्म हैं तिनके आवरणतैं अल्पज्ञपणां अर दोषसहितपणां है। सो आवरण दूर भये आत्मा सर्वज्ञ वीतराग होइ है। यह प्रमाणतैं सिद्ध है। ऐसैं आप्त सर्वज्ञका निश्चय भये तिसकै वचनरूप आगमका निश्चय होइ, आगमतैं सर्व वस्तुका निश्चय होइ। ऐसैं निश्चय करतैं देवागमादि विभूतिसहितपणांतै अर विग्रहादिमहोदयपणांतैं अर तीर्थंकरपणांतैं तौ आप्त सर्वज्ञ सिद्ध न भया तातैं भले प्रकार निश्चय भया है असंभवता बाधकप्रमाण जामैं ऐसा भगवान अरहंत तुम ही संसारी जीवनिका प्रभू हो स्वामी हो यातैं आत्यन्तिक दोषनिका अर आवरणकी हानिकरि अर समस्त तत्वार्थनिका ज्ञातापणांकरि सूत्रकारादि मुनिननैं तुमारा स्तवन किया है॥ ३॥

ऐसैं आचार्य समंतभद्रनैं निरूपण किया तब फेरि मानूं भगवान साक्षात् पूछया जो अत्यंत दोष अर आवरणकी हानि मो विषैं कौन हेतुतैं निश्चय करी? ऐसैं पूछैं मानूं फेरि आचार्य समंतभद्र कहैं हैं—

दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात्।
कचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः॥ ४॥

अर्थ—दोष अर आवरण की हानि सामान्य तौ प्रसिद्ध है। जातैं एकदेश हानितैं अल्पज्ञनिकै एकदेश निर्दोषपणां अर एकदेश

ज्ञानादिक तिस हानिके कार्य देखिये हैं यातैं निर्दोष आवरणकी हानि संपूर्ण काहूविषैं देषिये हैं—साधिये हैं। इहां अतिशायन ऐसा हेतु है याका अर्थ यहू जो यहू हानि बधती बधती देखिये हैं। जैसें क्वचित् कहिए कहूं कनक पाषाणादिविषैं कीट कालिमा आदि बाह्य अभ्यन्तर मलका अपणां हेतु जो ताव देतैं सर्वथा अभाव होय है तैसें अल्पज्ञकै तिनका नाशके हेतु जे सम्यग्दर्शनादिक तिनतैं सर्वथा दोष अर आवरणका अभाव होइ है ऐसा सिद्ध होइ है। इहां आवरण तौ ज्ञानावरणादिक कर्म्मपुद्गलके परिणाम हैं अर दोष अज्ञानरागादिक जीवके परिणाम हैं। बहुरि इहां कोइ कहै—जैसें अतिशायन हेतुतैं दोष आवरणकी हानि संपूर्ण साधी। तैसें कहूं बुद्धि आदिगुणकी भी हानि बधती बधती देखिये हैं सो यह भी कहूं संपूर्ण सधै है? ताकूं कहिए—बुद्धि आदिकी संपूर्ण हानि आत्मा विषैं साधिये है तो आत्माकै जड़पणां आवै सो यह बड़ा दोष आवै तातैं जीवपुद्गलका संबंधरूप बंधपर्य्यायमैं क्षयोपशम रूप बुद्धि है ताका अभाव होइ है सो आत्माका स्वाभाविक ज्ञानादिगुण तौ संपूर्ण प्रकट होइ है अर बंध-पर्य्यायका अभाव होइ पुद्गल कर्मजड़रूप भिन्न होय जाय है तैसें पुद्गलकै बुद्धि आदि गुणका अभावका व्यवहार है। ऐसें वीतराग सर्वज्ञ पुरुष अनुमानकरि सिद्ध होइ है॥ ४॥

आगैं मीमांसकमती कहैं हैं—जो जीव है सो भावकर्म अज्ञानादिकतैं रहित भया होय तौऊ सूक्ष्मादि पदार्थ समस्तकूं तौ नांही जानैं। अथवा अन्य पदार्थनिकूं सर्वकूं जानै तौ जानूं परन्तु धर्म अधर्मकूं सो नांही जानैं ऐसैं मानूं भगवान फेर पूछया तब मानूं फेर समंतभद्रा-चार्य्य सूत्रकारादिक स्तवन करनेवाले मुनिनकै बुद्धिका अतिशय जनावनेंकी इच्छाकरि भगवानकूं कहैं हैं—

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥ ५ ॥

अर्थ—सूक्ष्म कहिये स्वभावकरि क्षीण परमाणु आदिक बहुरि अंतरित कहिये कालकरि जिनका अंतर पड्या ऐसे रामरावणादिक बहुरि दूरस्थ कहिये क्षेत्रकरि दूरवर्ती मेरू हिमवत् आदिक ये पदार्थ हैं ते कोईकै प्रत्यक्ष दृष्ट हैं जातैं यह अनुमेय हैं, अनुमान प्रमाणके विषैं यह जैंसे अग्नि आदिक पदार्थ अनुमानका विषय है सो कोई काकूं प्रत्यक्ष भी देखै है तैसैं यह सूक्ष्म आदिक भी हैं। ऐसैं सर्वज्ञका भले प्रकार निश्चय होय है। इहां कोई कहै—जे पदार्थ अनुमानके विषय हैं ते तौ कोईकै प्रत्यक्ष हैं अर जे अनुमान गोचर ही नाहीं ते कैसे प्रत्यक्ष होय? ताकूं कहिये—जो धर्मादिक पदार्थनिकूं अनुमानका विषय न मानिये तौ सर्व ही अनुमानका उच्छेद होइ है। अर इहां धर्म अधर्म्म पदार्थ विवादमैं आये हैं तिनहींकूं साधिये हैं। अन्य पदार्थ विवादमैं न आये तिनकी चरचा नाहीं अर धर्मादिक पदार्थ हैं ते अनुमानके विषय हैं ही। जातैं ते अनित्यस्वभावरूप हैं। काहूकै सुख होय जहां जानिये याकै पुण्यका उदय है। काहूकै दुःख होइ तहां जानिये याकै पापका उदय है। ऐसैं अनुमानके विषय धर्मादिक पदार्थ हैं। तातैं कोईकै प्रत्यक्ष हैं ऐसैं सर्वज्ञका अनुमानकरि फेर स्थापन किया ॥ ५ ॥

आगैं फेर मानूं भगवान पूछया—जो ऐसैं सामान्यपणैं तौ सर्वज्ञ सिद्ध भया परन्तु ऐसा परमात्मा अरहन्त ही है ऐसा निश्चय कैसैं किया जातैं तुमारे हम ही महान् वदनीक ठहरैं, ऐसैं पूछैं मानूं फेर आचार्य जैसैं अरहंत ही सर्वज्ञ ठहरैं ऐसा साधन कहैं हैं—

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् ।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—हे भगवन्! स कहिए सो पूर्वोक्त निर्दोष कहिए आवरण अर अज्ञानरागादिक तिनतैं रहित ऐसा सर्वज्ञ वीतराग तुम ही हो, जातैं कैसे हो तुम ? युक्ति अर शास्त्र इन दोऊनतैं विरोध रहित अविरोधि हैं वचन जिनकै ऐसे हो । जैसैं कोई श्रेष्ठ वैद्य होइ तैसैं । इहां भगवान मानूं फेर पूछया—जो हे समन्तभद्र ! हमारे वचन युक्ति–शास्त्रतैं अविरोधी कैसैं निश्चय किये ? तहां आचार्य फेरि कहैं हैं—हे भगवन् ! जो तुमारा कह्या इष्ट तत्व मोक्ष अर मोक्षका कारण, संसार अर संसारका कारण यह है सो प्रसिद्ध जो प्रमाण ताकरि नांही बाधिये हैं । जो प्रमाणकरि नाहीं बाध्या जाय सोई युक्तिशास्त्राविरोधी। इहां वैद्यका दृष्टान्त श्लोकमैं नांही है तौऊ आचार्य स्वयंभूस्तोत्रमैं आप कह्या है तातैं अष्टसहस्री टीकामैं कह्या है । वैद्यभी रोग अर रोगकी निवृत्ती अर तिनके कारणविषैं निर्बाध प्रवर्त्तै है, ऐसैं वैद्यका दृष्टान्त हैं । तहाँ मोक्षादितत्व निर्बाध कैसे हैं सो दिखावैं हैं—प्रथम तौ भगवान अरहंतका भास्या मोक्षतत्व है सो प्रमाणकरि बाध्या न जाय है । इन्द्रियजनित प्रत्यक्ष प्रमाणका तौ मोक्ष विषय ही नाहीं बाधक कैसे होय, बाधक साधक होय, सो अपने विषयहीका होय। बहुरि अनुमान अर आगमकरि मोक्षका अस्तित्वका स्थापन है ही, कहूं दोष आवरणका अत्यन्त अभाव भये अनन्त ज्ञानादिकका लाभ सो मोक्ष अनुमान आगमतैं प्रसिद्ध है । तैसैं ही मोक्षका कारणतत्व सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र हैं ते भी प्रमाणकरि सिद्ध हैं । जातैं कारण विना कार्यका न होनां प्रसिद्ध है । बहुरि संसारतत्व है सो भी प्रमाणकरि बाध्या न जाय है । अपने उपजाये कर्मकै वशतैं आत्माकै एक भवतैं

अन्यभवकी प्राप्ति सो संसार है सो प्रत्यक्ष है अनुमानका तौ विषय ही नांहीं तिनकी बाधा कैसैं आवै । बहुरि तिनका विषय होइ तौ ते साधक ही होय, बाधक न होइ । बहुरि संसारका कारणतत्व भी प्रमाणबाधित नांहीं है जातैं कारण विनां कार्य होय नांही । मिथ्यात्वादि संसारके कारण प्रसिद्ध हैं । ऐसैं मोक्ष मोक्षका कारण अर संसार संसारका कारण तत्व प्रमाणकरि बाधे न जाँय तातैं भगवान अरहंतके वचन युक्तिशास्त्रतैं बाधे न जांय। सो ऐसे निर्बाध वचन भगवानकै निर्दोषपणांकूं साधै ही है। इहाँ कोई कहै—सर्वज्ञ वीतरागकै इच्छा विना उपदेशरूप वचनकी प्रवृत्ति कैसैं संभवै? ताकूं कहिए है—वचन प्रवृत्तिकूं कारण नियमकरि इच्छा ही नांही है । विनां इच्छा भी वचन प्रवृत्ति होइ है, जैसैं सूता आदिककै इच्छा विना वचन प्रवृत्ति होइ है तैसैं जाननां, यातैं सर्वज्ञ वीतराग भगवान् स्तुति करनें योग्य है यातैं हे भगावन्! ऐसे तुम ही मोक्ष मार्गके प्राप्त करनेंवाले हो अन्य कपिल कहिये सांख्यमती आदिक ऐसे नाहीं हैं ॥ ६ ॥

सोई दिखाइये हैं—

त्वन्मतामृतबाह्यानां सर्वथैकान्तवादिनाम् ।
आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते ॥ ७ ॥

अर्थ—हे भगवन्! तुम्हारा मत अनेकान्त स्वरूप वस्तु है। तथा ताका ज्ञान है सो यहु अमृत जो मोक्ष ताका कारण हैं तातैं यहू मतभी अमृत है, सर्वथा निर्बाध है, तातैं भव्यजीवनिके परितोषका उपजावनेंवाला है यातैं बाह्य सर्वथा एकान्त है। तिसके अभिप्रायवाले तथा कहनेंवाले सांख्य आदि मतके प्ररूपक कपिल आदिक हैं ते आप्तपणांके अभिमान करि दग्ध हैं जातै ऐसैं मानैं हैं जो हम आप्त हैं अर बाधासहित सर्वथा एकान्तके कहनेंवाले हैं तातैं झूठा

अभिमानकरि दग्ध हैं तिनका मान्यां स्वेष्टतत्व है सो सर्वथा सत्, सर्वथा असत, सर्वथा एक, सर्वथा अनेक इत्यादिक है सो दृष्ट कहिए प्रत्यक्ष प्रमाणकरि बाध्या जाय है। जातैं सकल बाह्य अंतरंग वस्तु है सो अनेकान्त स्वरूप है। समस्त जगतके जीविनके अनुभवमैं ऐसा ही आवै है तातैं हम भी सर्वथा एकान्त रूप नांही देखै हैं। ऐसैं प्रत्यक्ष प्रमाणकरि बाधित है ॥ ७ ॥

आगैं आशंका उपजै है—जो सर्वथा एकान्त वादीनिकै भी शुभाशुभरूप कुशलाकुशल कर्मकी बहुरि परलोककी प्रसिद्धि है। यातैं आप्तपणां है तातैं महान्‌पणां स्तुति योग्य क्यों नाहीं, ऐसी आशंका होतैं आचार्य्य कहैं हैं—

कुशलाकुशलं कर्म्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथः स्वपरवैरिषु ॥ ८ ॥

अर्थ—हे नाथ! जो सर्वथा एकान्तके कहनैंमैं आसक्त हैं अथवा सर्वथा एकान्तरूप पिशाचकै वशीभूत जिनका अभिप्राय है तिनविषैं कुशल कहिए कल्याणरूप शुभकर्म अर अकुशल कहिए अकल्याणस्वरूप अशुभकर्म बहुरि परलोक तथा परलोकका कारण धर्माधर्म, बहुरि मोक्ष आदिक एकान्तहू नाहीं संभवै है, जातैं कैसे हैं ते स्व कहिये आपके अर परके वैरी हैं, जैसैं शून्यवादी सर्वथा वस्तुकूं शून्य मांनि आपका अर परका नाश करै है तैसैं हैं। तहां स्व तौ कहा अर पर कहा सो कहैं हैं—पुण्यरूप तथा पापरूप तो कर्म अर ताका फल सुखदुःखरूप कुशलाकुशल, अर तिसका संबंधरूप परलोक ये तौ स्व हैं जातैं इनकूं सर्वथा एकान्तवादी मानै है बहुरि पर तिनकै अनेकान्त है जातैं तिननैं अनेकान्त मान्या नांहीं। बहुरि अनेकान्तका ते निषेध करै हैं। तातैं ते अनेकान्तके वेरी हैं। सो यह परका वैरीपणां है

सो ही आपकै वैरी पणांकूं साधै है। जातैं अनेकान्त न मान्या तब सर्वथा सत्‌रूप तथा सर्वथा असत्‌रूप तथा सर्वथा नित्यरूप तथा सर्वथा अनित्यरूप ऐसा तत्व माननां तब ऐसैं वस्तुमैं अर्थक्रियाका अभाव सिद्ध होइ है अर अर्थक्रिया विना पुण्य-पाप कर्म आदिक नांहीं सिद्ध होय तब अनेकान्त मान्यां विना पुण्यपाप आदिकी सिद्धि न होइ तब परकै वैरीपणांतैं आपणां वैरीपणां सिद्ध भया ऐसैं सर्वथा एकान्तवादीनिकै प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणकरि विरुद्ध भाषीपणां है यातैं अज्ञानादि दोष-निकी सिद्धि है तातैं आप्तपणां बणैं नांही यातैं हे भगवन्! तुम अर-हन्त ही सर्वज्ञ वीतराग युक्तिशास्त्रतैं अविरोधी वचनपणांकरि निर्दोष हो, ऐसा निश्चयकरि तत्वार्थ शासनका आरम्भविषैं मुनिननैं तुमकूं स्तवन गोचर किये हैं जातैं तुम ही तत्वार्थ शासनकी सिद्धिके कारण हो ॥ ८ ॥

आगैं भगवान् मानूं फेर पूछैं हैं—जो हे समन्तभद्र! पदार्थनिका भाव ही है, अभाव नांहीं, ऐसा निश्चय होतैं प्रत्यक्षानुमानतैं विरोधका अभाव है यातैं भाव—एकान्तवादीनिकै निर्दोषपणांकी सिद्धितैं आप्त-पणां बणैं है। तातैं तिनकै स्तुति योग्यपणां होहू ऐसैं पूछैं मानूं फेर आचार्य कहै है—

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात्।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम् ॥ ९ ॥

अर्थ—हे भगवन्! पदार्थनिकै भाव एकान्त होतैं अभावनिका लोप भया यातैं सर्वात्मक अनाद्यन्त ऐसा ठहऱ्या सो ऐसा वस्तुका निज-रूप नांही सो तुमारा मत नांही। तहां सांख्यमतमैं तौ पदार्थ पंचीस

---

१ मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥ १ ॥

मानैं हैं। तहां मूल प्रकृति एक विकार रहित ॥ १ ॥ एक महान् सो उत्पत्तिविनाश पर्यन्त तिष्ठनेंवाली बुद्धि ॥ १ ॥ तिस बुद्धितैं उपजे ऐसा अहंकार ॥ १ ॥ गंध रूप रस स्पर्श और शब्द ऐसैं तन्मात्रा पांच ॥ ५ ॥ ऐसैं यह सात प्रकृति[1] की विकृति, बहुरि बुद्धि-इन्द्रिय ॥ ५ ॥ कर्म-इन्द्रिय ॥ ५ ॥ तन्मात्रातैं भये पांचभूत पृथ्वी, अप्, तेज वायु, आकाश ऐसैं ॥ ५ ॥ अर एक मन ऐसैं षोडशक याकूं विकार कहै हैं। बहुरि प्रकृति-विकृतितैं रहित एक पुरुष ऐसैं पचीस भये इनका अस्तित्व ही है, नास्तित्व नांही, ऐसैं भाव एकान्त है। सो ऐसा मानैं चार प्रकारका अभाव है ताका लोप होइ तब इतरेतराभावांका लोपतैं सर्वात्मक कहिये पचीस तत्त्व एक तत्त्व ठहरै तब भेद कहनेका विरोध आवै। बहुरि अत्यन्ताभावका लोपतैं प्रकृतिकै पुरुषका अत्यन्त (अभाव) है ताकूं न मानिये तब प्रकृत्तिकै पुरुषरूप-पणा आवै तब प्रकृति-पुरुषका भिन्न लक्षण कहनेका विरोध आवै। बहुरि प्रागभावके लोपतैं प्रकृतितैं महान् भया, महान्तैं अहंकार भया, अहं-कारतैं षोडशक गण भया, पंच तन्मात्रातैं पंचमहाभूत भये, ऐसैं सृष्टिका उपजनां कहनां निषेद्या जाय तब ये सर्व अनादि ठहरै। बहुरि प्रध्वंसाभावके लोपतैं ये महान् आदिकनिकूं विनाशमान अनित्य कहै ते सर्व नाशरहित ठहरै तब प्रलयका कहनां मिथ्या ठहरै। पृथ्वी आदि महाभूत तौ पांचतन्मात्रामैं लय होय है। बहुरि षोडशक गण अहंकारमैं लय होय है, अहंकार महान्मैं लय होइ है, महान् प्रकृतिमैं लय होय है ऐसैं संहारका कहनां बिगडै है। ऐसैं सांख्यमती तत्वका स्वरूप कहै है सो यहु तत्वका निजस्वरूप नांही तातैं अन्य स्वरूप है। ऐसैं ही अन्योन्याभाव भी न मानें एकान्त वादीनिके मतमैं दोष आवै

१ प्रकृति (कारण) और विकृत (कार्य) इत्यनेन पाठेन भाव्यं।

है। क्योंकि अन्योन्याभाव न मानैं तब जब केवल भाव मानें काहूका निषेध न होइ तब एकरूप तत्व ठहरै, सो है नाहीं । वेदान्तवादी तौ सत्तामात्र एक ब्रह्मकूं तत्व मानैं हैं, अर विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धमती विज्ञानमात्र एक तत्व मानैं हैं, अर भेदभावकूं अविद्यारूप भ्रमरूप अवस्तु मानैं है सो ऐसा तत्व काहू प्रकार सिद्ध होइ नाहीं तातैं सो तुम्हारा अरहन्तका मत नांहीं जातैं तुम्हारा मतमैं कथंचित् अभावका लोप नांहीं ॥ ९ ॥

आगैं घटादिककै बहुरि शब्दादिककै प्रागभाव अर प्रध्वंसाभावका लोप कहनैंवाला वादीकै दूषण दिखावते संते कहै हैं—

कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निन्हवे ।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ॥ १० ॥

अर्थ—प्रागभाव कहिए कार्यके पहले न होना ताका निन्हव कहिये लोप ताकै होतैं कार्यद्रव्य कहिये घट आदिक तथा शब्दादिक वस्तु सो अनादिके ठहरै सो ऐसे हैं नाहीं यह दोष आवै। बहुरि प्रध्वंस कहिए कार्यका विघटनांनामा धर्म ताका प्रच्यव कहिये लोप होतैं कार्यद्रव्य है सो अनन्ततांकूं प्राप्त होइ अविनाशी ठहरै सो है नांहीं यह दोष आवै है । तहां घटादि कार्यद्रव्यकै अनादिता तथा अनन्तताका प्रसंगका उदाहरण तौ सांख्यमतकी अपेक्षा है बहुरि शब्दादिक कार्यद्रव्यकै अनादिता तथा अनन्तताका प्रसंगका उदाहरण मीमांसकमतकी अपेक्षा है इनकी चर्चा अष्टसहस्री टीकातैं जाननी ॥ १० ॥

आगैं इतरेतराभाव अर अत्यंताभावके न माननेंवाले वादीनिकै दूषण दिखावनेकी इच्छाकरि आचार्य कहैं हैं—

सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे ।
अन्यत्र समवाये न व्यपदिश्येत सर्वथा ॥ ११ ॥

अर्थ—अन्यापोह कहिए अन्यस्वभावरूप वस्तुतैं अपने स्वभावका भिन्नपणां याकूं इतरेतराभाव कहिये, याका व्यक्तिक्रम कहिये लोप-ताकै होतैं तत् कहिये सर्व वादीनिनैं मान्यां जो वस्तुका भिन्न भिन्न स्वरूप सो सर्व एक-सर्वात्मक होय यह दोष आवै है। आप न मान्यां ऐसा परका मान्यां तत्व सो भी आपका मान्यां ठहरै ऐसैं सर्वात्मक एक ठहरै। बहुरि अपने समवायी पदार्थकै अन्य समवायी पदार्थविषैं समवाय होना सो अत्यन्ताभावका लोप है ताकूं होतैं सर्ववादीनिका इष्ट-तत्व व्यपदेश कहिये नाम ताकूं नाहीं पावै है। अपनां मान्यां स्वरूप-विषैं परका मान्यां स्वरूपका भी नामका प्रसंग आवै है। आपकै इष्ट तथा अनिष्ट तत्वविषैं तीन काल विषैंभी विशेषका मानना न ठहरै है, यह दोष है। इहां कोई पूछै—प्रागभाव प्रध्वंसाभावमैं अर इतरेतराभाव अर अत्यंताभावमैं विशेष कहा है? तहां उत्तर—जो कार्यद्रव्य घटादिक ताके पहलैं अवस्था थी सो तो प्रागभाव है। बहुरि कार्यद्रव्यके पीछै जो अवस्था होय सो प्रध्वंसाभाव है। बहुरि इतरेतराभाव है सो ऐसैं नाहीं है जो दोय भावरूप वस्तु न्यारे न्यारे युगपत दीसै तिनकै परस्पर स्वभावभेदकरि वाका निषेध वामैं वाका निषेध वामैं इतरेतराभाव है यह विशेष है सो यह तौ पर्यायार्थिक नयका विशेषपणां प्रधान-पणांकरि पर्यायनिकै परस्पर अभाव जाननां। बहुरि अत्यंताभाव है सो द्रव्यार्थिकनयका प्रधानपणांकरि है, अन्य द्रव्यका अन्यद्रव्यविषैं अत्यन्ताभाव है, ज्ञानादिक तौ पुद्गलमैं काहू कालविषैं होय नाहीं। बहुरि रूपादिक जीव द्रव्यविषैं काहू कालमैं होइ नाहीं ऐसैं इतरेतरा-भाव अर अत्यन्ताभाव यह दोऊ अभाव न मानिये तौ सर्व तत्वका एकतत्व होइ जाय अर अपणां परका इष्टतत्वकी व्यवस्था न ठहरै, ऐसैं दोष आवै है। तातैं अभावकूं कथंचित् भावकी ज्यों वस्तुका धर्म माननां योग्य है ॥ ११ ॥

आगैं अभावैकान्त पक्षविषैं दूषण दिखावै हैं।

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापन्हववादिनाम्।
बोधवाक्यं प्रमाण न केन साधनदूषणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—अभाव कहिये किछू भावरूप वस्तू नांही ऐसा अभाव एकान्त पक्ष है ताकै होतैं भावका लोप भया सो इस भावके लोप कहने वाले वादीनिकै बोध कहिये ज्ञान जिसतैं अपणां अर्थ—तत्वका साधन दूषण करिये अर वाक्य कहिये परका अर्थतत्वका साधनदूषण-रूप वचन इनका अभाव आया तब प्रमाणकी व्ववस्था न ठहरी तब अपणां अभावैकांत पक्ष काहेकूं थापै अर परका भावपक्ष काहेतैं दूषै? बहुरि जो स्वपक्षका साधन दूषण मानिये तो भावपक्षकी सिद्ध होइ है। ऐसा दूषण आवै है तातैं अभावैकान्तपक्ष कल्याणकारी नांहीं है ॥१२॥

आगैं कहैं हैं—जो परस्पर अपेक्षारहित भावाभाव पक्ष अवक्तव्य-पक्ष भी कल्याणकारी नांही है ऐसैं स्वामी समन्तभद्राचार्य्य कहैं हैं—

विरोधान्नोभयैकान्तं स्याद्वादन्यायविद्विषां।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ १३ ॥

अर्थ—उभय कहिये भाव अर अभाव ये दोऊ एकात्म्यं कहिये एकस्वरूप सो नांही है तातैं स्याद्वादन्यायके विद्विषां कहिये शत्रु-विरोधी तिनकै भाव अभाव दोऊ एक स्वरूप कहनेंमैं परस्परपरिहारस्थिति-लक्षण विरोध आवै है। बहुरि अवाच्य कहिये कहनेंमैं न आवै ऐसा अवक्तव्य एकान्त मानिये तौ वस्तु अवक्तव्य है, ऐसो कहनौं युक्ति न होइ है। तहां ऐसा जाननां जो भाव पक्षमैं अर अभाव पक्षमैं न्यारे न्यारे मानें दोष आवै ताकै दूर करनेकी इच्छाकरि दोऊकूं एक-स्वरूप माननेंवालेकै विधि निषेधके परस्परपरिहारस्थितिस्वरूपपणां

है। तातैं दोऊकूं एकरूप माननां युक्त होइ नांही, जातैं विरोध दूषण आवै। यातैं ऐसा माननां कल्याणरूप नांही। बहुरि भाव अभाव अर दोऊ इन तीनूं ही पक्षमैं दोष आया जाणि अवक्तव्य—एकान्त पक्षका ग्रहण करै ताकै अवक्तव्य तत्व है ऐसा कहनां भी न बणैं तब परकूं अपणां अवक्तव्य तत्व कैसे जणावै वचन विनां ज्ञानमात्र-हीतैं तौ परकूं जनावनां बणैं नांही तातैं अवक्तव्य एकान्त मानना भी कल्याणकारी नांही ॥ १३ ॥

आगैं फेर मानूं भगवान पूछया—जो हे समन्तभद्र ! भाव, अभाव, भावाभाव, अवक्तव्य एकान्त मानैं हैं तिन पक्षनिमैं तौ दूषण दिखाय परमतका निराकरण किया परन्तु वादीकी जीति तौ परमत-निराकरण अर स्वमतका स्थापन इन दोऊनकै आधीन है तातैं हमारा इष्ट—तत्व मत है सो कैसैं प्रसिद्ध प्रमाणकरि नांही बाध्या जाय है सो कहो ऐसैं पूछैं मानूं आचार्य्य भाव आदि चारूं पक्ष कथंचित् निरबाध दिखावै हैं—

कथंचित्ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत् ।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥ १४ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! तुमारा इष्टतत्व है सो कथंचित् कोई प्रकार सदेव कहिए सत् ही है। बहुरि कथंचित् असदेव कहिए कोई प्रकार असत् ही है। बहुरि तैसैं ही कोई प्रकार उभयमेव कहिये कोई प्रकार सत् असत् दोऊ ही है। बहुरि तैसैं ही अवाच्य कहिए कोई प्रकार अवक्तव्य ही है। बहुरि चकारकरि तैसैं ही कोई प्रकार सदवक्तव्य है। बहुरि तैसैं ही कोई प्रकार असदवक्तव्य ही है ? बहुरि तैसैं ही कोई प्रकार सत् असत् अवक्तव्य ही है सो ऐसा काहेतैं है ? नययोगात् कहिए द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक आदि नयनिके योगतैं है, यह कोई प्रकारका

प्रयोजन है। बहुरि कोई प्रकार कहनेंतैं सर्वथाका निषेध भया सोहू फेर सर्वथा नांही ऐसा नियमके अर्थि वचन है। ऐसैं प्रश्नके वशातैं एक वस्तुविषैं अविरोधकरि विधिप्रतिषेधकी कल्पनातैं सप्तभंगकी प्रवृत्ति होइ है। ऐसैं नयवाक्यमात्र ही है। विधिनिषेधके भंग सात ही हैं। इनतैं अन्य नांहीं होइ हैं। जो संयोग भंग कीजिये तौ इनहीमैं अंतर्भूत होइ हैं तथा कोई पुनरुक्त होइ हैं। बहुरि यह सातप्रकार वस्तु धर्म है—असत् कल्पनां नांहीं है। इनहीतैं वस्तुका यथार्थ ज्ञान अर वस्तुकै अर्थक्रियारूप प्रवृत्तिका निश्चय होइ है। इनमैं सत् असत् अवक्तव्य ये तीन भंग तौ एक एक ही हैं बहुरि सत्-असत् क्रम-करि कहना, अर सदवक्तव्य, असदवक्तव्य ये तीन द्विसंयोगी हैं, बहुरि सत्-असत्-अवक्तव्य यह एक त्रिसंयोगी है। सत्, असत्, सत् असत्—क्रमकरि कहनां ये तीन तो वक्तव्य भये अर एक अवक्तव्य का ऐसैं चार तो ये अर वक्तव्य अवक्तव्य का संयोग भंग करनेंतैं तीन फेर भये ऐसैं सात भंग भये हैं। इहां सत् आदि शब्द हैं ते तौ अने-कान्तके वाचक हैं अर कथंचित् शब्द है सो अनेकान्तका द्योतक है बहुरि याकै आगैं एवकार शब्द है सो अवधारण कहिये नियमकै अर्थि होइ है। बहुरि यह कथंचित् शब्द है सो याका पर्य्यायशब्द स्यात् ऐसा है। सो सर्व वचननि परि लगाइये हैं ऐसो जहां याका प्रयोग नांहीं होइ तहां भी जे स्याद्वाद न्यायमैं प्रवीण है ते सामर्थ्यसूं जाणि ले हैं। स्यात् शब्द विनां सर्वथा रूप ही वस्तु है इत्यादि कहनेमैं अनेक दोष आवै है तिनकी चरचा टीकातैं जाननीं ॥ १४ ॥

आगैं पहली कारिकामैं नययोग कह्या सो अब पहले दूसरे भंगविषैं नययोग दिखावै हैं—

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात् ।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १५ ॥

अर्थ—स्वरूपादि चतुष्टयात् कहिये अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप चतुष्टयतैं सर्व वस्तु सत् ही हैं ऐसैं लौकिक जन तथा परीक्षक जन ऐसा कौन है जो नांहीं इष्ट करै है—सब ही मानै है। बहुरि विपर्यासात् कहिये परके द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप चतुष्टयतैं असत् ही है ऐसैं सर्व ही मानै हैं। इहां सर्व वस्तु कहनैंतैं चेतनाचेतन द्रव्य तथा पर्याय तथा भ्रान्ताभ्रान्त तथा आपकै इष्ट तथा अनिष्ट इत्यादि जाननें। जातैं जो प्रतीतिमैं आवै ताका लोप करनेंका असमर्थपणां है। बहुरि कुनयकरि विपर्यस्त भई है बुद्धि जाकी ऐसा कोई दुर्मति नाहीं इष्ट करैं——न मानैं सो काहू ही इष्ट तत्वविषैं नाहीं तिष्ठै है जातैं वस्तुविषैं जो वस्तुपणां है सो अपने स्वरूपका तौ उपादान कहिये ग्रहण अर परके स्वरूपका अपोहन कहिए त्याग इन दोऊ व्यवस्थाकरि ठहरै है। जो अपने स्वरूपकी ज्यौं पररूपकरि भी सत्व मानिये तौ चेतनादिककै अचेतनादिकपणांका प्रसंग आवै। बहुरि पररूपकी ज्यौं स्वरूपकरि भी असत्व मानिये तौ सर्वथा शून्यपणांकी प्राप्ति आवै। तैसैं ही स्वद्रव्य की ज्यौं परद्रव्यकरि भी सत्व मानिये तौ भिन्नद्रव्य न्यारे न्यारे न ठहरै बहुरि परद्रव्यकी ज्यौं स्वद्रव्यकरि भी कोईकै असत्व मानिये तौ सत्का द्रव्याश्रय न ठहरै। तैसैं ही अपने क्षेत्रकी ज्यौं परक्षेत्रतैं भी सत् मानिये तौ काहूका न्यारा क्षेत्र न ठहरै। बहुरी परक्षेत्रकी ज्यौं अपने क्षेत्रतैं भी असत् मानिये तो क्षेत्र विनां द्रव्य ठहरै। तैसैं ही अपने कालकी ज्यौं परकालतैं भी सत्व मानिये तौ अपनां अपना मान्या काल न ठहरै। बहुरि परकालकी ज्यौं अपनैं कालकरि भी असत्व मानिये तौ वस्तुका सकल कालविषैं असंभवीपणां ठहरै। ऐसैं वह दुर्मति कहां तिष्ठै अपनां

इष्ट अनिष्टकी व्यवस्था विनां कहूं ठहरना नांहीं। तातैं यहू भलै प्रकार कह्या हुआ बणै है जो सत्व असत्व एक वस्तुमैं न मानिये तौ स्वपर-तत्वकी व्यवस्था न ठहरै तब सर्वथा एकान्ती कहूं ठहरै नाहीं ॥१५॥

आगैं ऐसैं प्रथम द्वितीय भंगका स्थापनकरि अब तृतीयादिक भंग-निकूं आचार्य निर्देश करै है—

क्रमार्पितद्वयाद्द्वैतं सहावाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भंगाः स्वहेतुतः ॥ १६ ॥

अर्थ—क्रमार्पित कहिये पहलैं न्यारे न्यारे कहे जे सत् असत् ते दोऊ अनुक्रमतैं कहनैंतैं वस्तु द्वैत है। बहुरि सत् असत् ये दोऊ सह कहिये युगपत् एककाल अवाच्य कहिये कहनेमैं न आवै तातैं युगपत् कहनेकी वचनकै सामर्थ्य नांहीं तातैं अवक्तव्य हैं। बहुरि शेषाः कहिये अवशेष जे तीनभंग अवक्तव्य है उत्तर पद जिनकैं ऐसैं ते अपनें अपनें हेतुतैं लेणें। तहां अनुक्रमकरि अर्पण किया जो स्वरूपादि अर पररूपादिकका चतुष्टय द्रव्य क्षेत्र काल भावका द्विक तातैं तौ कोई प्रकार सत्-असत् ऐसा दोऊका एक भंग है। याकूं द्वैत ऐसा नाम कह्या सो द्वित शब्दपर स्वार्थविषैं ' अण् ' प्रत्ययकरि द्वैत शब्द निपजाया है। बहुरि अपनां अर परका स्वरूपादिक चतुष्टय अपेक्षा एक काल कहनेंकी अशक्तितैं अवक्तव्य है। जातैं जिस प्रकार कहनेंवाला पद तथा वाक्यका अभाव है। बहुरि वाका तीन भंग पांचमां छटमां सातमां सत् असत् उभय इनकै अवक्तव्य उत्तरपद लगाय अपने हेतुकै वशतैं कहनें, ते कैसैं ? कोई प्रकार सत् अवक्तव्य ही है, जातैं स्वरूपादि चतुष्टयकी अपेक्षा तौ सत् ऐसा वक्तव्य है परंतु सत् असत् ऐसे दोऊ एक कालवस्तुमैं हैं तातैं एक काल कहे नांहीं जाय हैं तातैं अवक्तव्य भी है, ऐसैं यहु पांचमां भंग है। बहुरि ऐसैं ही कोई प्रकार असत् अवक्तव्य भी है,

तातैं पररूपादि चतुष्टयकी अपेक्षा तौ असत् ऐसा कह्या जाय है अर सत् असत् ये दोऊ एक काल है परन्तु एककाल कहे जाते नांही, तातैं असत् अवक्तव्य है, ऐसैं छट्ठा भंग है। बहुरि कोई प्रकार सदसदवक्तव्य ही है। जातैं सत् असत् ये दोऊ क्रमकरि कहे जाय हैं अर दोऊ एककाल कहे न जाय हैं तातैं सदसदवक्तव्य ऐसा सातमां भंग है। ऐसैं यह वक्तव्यावक्तव्यस्वरूप तीन भंग पूर्वोक्त च्यार भंगनितैं न्यारे ही हैं। बहुरि तिनमैं सदसद् उभय इन तीनमैंसूं एक न होय तो अवक्तव्य धर्म बणै नांही जातैं तिन तीनूंनकूं होतैं भी तिनकी विवक्षा न करते केवल एक न्यारा ही अवक्तव्य भंग कहनेमैं विरोध नांही है। ऐसैं इन भंगनिकी स्वमत परमत अपेक्षा संभवनैंकी चरचा अष्टसहस्रीमैं है तहांतैं जाननी ॥ १६ ॥

आगैं कहैं हैं—जो वस्तुका स्वरूप अस्तित्व ही है, नास्तित्व वस्तुका स्वरूप नांही है सो परवस्तुके स्वरूपके आश्रय है, एक ही वस्तुकै आश्रय होनेमैं अतिप्रसंग दूषण आवै है, ऐसी तर्क होतैं आचार्य कहैं हैं—

अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि ।
विशेषणत्वात् साधर्म्यं यथा भेदविवक्षया ॥ १७ ॥

अर्थ—अस्तित्व धर्म है सो एक धर्म्मि जो जीव आदिक ताविषैं प्रतिषेध्य जो [अस्तित्वकै] नास्तित्व ताकरि अविनभावी है। नास्तित्व विना अस्तित्व नांहीं होइ, दोऊका भिन्न आधार नाहीं। जातैं या अस्तित्व नास्तित्वकै विशेषणपणां है। जो विशेषण होइ सो एक धर्मिविषैं अपना प्रतिषेध धर्म्मसूं अविनाभावी होइ। जैसैं हेतुका प्रयोगविषैं साधर्म्य है सो भेदाविवक्षा कहिये वैधर्म्य ताकरि अविनाभावी है। यह सर्व हेतुवादीनिकै प्रसिद्ध है। जहां अन्वय होइ तहां व्यतिरेक भी होय

जैसैं घटविषैं अस्तित्व है जैसैं यह पट नांहीं है ऐसा नास्तित्व भी है। जो इहां नास्तित्व नाहीं होय तो घट पट भी होइ जाय। ऐसैं अस्तित्व धर्म है सो एक धर्मीविषैं नास्तित्वधर्मकरि अविनाभावी जाननां॥ १७॥

आगैं फेर पूछै—जो अस्तित्व तौ नास्तित्वकरि अविनाभावी होइ अर नास्तित्व अस्तित्वकरि अविनाभावी कैसे होइ, आकाशके फूलकै तौ अस्तित्वका कोई प्रकार भी संभवै नाहीं बाकै तो नास्तित्व ही है ऐसैं पूछैं आचार्य कहैं हैं—

नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि ।
विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया ॥ १८ ॥

अर्थ—नास्तित्व धर्म है सो अपना प्रतिषेध्य जो अस्तित्व धर्म ताकरि एक धर्मीविषैं अविनाभावी है। जातैं यह विशेषण है जैसैं हेतुके प्रयोगविषैं वैधर्म्य है सो अभेद विवक्षा कहिये साधर्म्यरूप प्रतिषेध्यधर्मकरि अविनाभावी है यह सर्व हेतुवादीनिकै प्रसिद्ध है, जैसैं शब्दकै अनित्यपणां साधनेंविषैं कृतकपणां हेतु आकाशादि विपक्षमैं धर्मरूप है सो घटादिसपक्षतैं समाधान धर्मरूप जो साधर्म्य ताकरि अविनाभावि विशेषण है ऐसा उदाहरण जीवादि एकधर्मीविषैं पररूपादिकरि नास्तित्वकूं स्वरूपादिककरि अस्तित्वकरि अविनाभावी साधै ही है। इहां भावार्थ ऐसा—जो अस्तित्व नास्तित्व दोऊ परस्पर विधिनिषेधस्वरूप हैं, विधि विना निषेध नाहीं निषेध विनां विधि नांहीं ॥ १८ ॥

आगैं पूछै है—जो अस्तित्व (नास्तित्व) तौ विशेषण कहिये हैं विशेष्य नाहीं है। तातैं अस्तित्व नास्तित्वके अविनाभावि साधनेंकूं दोय कारिका अनुमानप्रयोगकी कही सो विशेषणरूप धर्म तौ साध्यसाधनकै आधार होइ नाहीं तातैं अनुमानका प्रयोग कैसैं बणैं, केइ तौ ऐसैं कहैं हैं।

बहुरि केई ऐसैं कहैं हैं—जो वस्तुका स्वरूप तौ वचनगोचर नाहीं तातैं कहना बणैं नाहीं। बहुरि केई ऐसैं कहैं हैं—जो जीवादिक वस्तुकै अत्यंत भेद ही है जैसें घट पट भिन्न है तातैं अस्तित्व नास्तित्व भिन्न ही हैं—तिन स्वरूप वस्तु नाहीं ऐसैं कहनेंवालेनि प्रति आचार्य कहैं हैं—

विधेयप्रतिषेध्यात्मा विशेष्यः शब्दगोचरः।
साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया॥ १९॥

अर्थ—विशेष्य कहिये विशेषणके योग्य सर्व ही जीवादिक पदार्थ हैं सो, विधेय कहिये विधिके योग्य अस्तित्वधर्म, अर प्रतिषेध्य कहिये निषेध योग्य नास्तित्वधर्म इनि दोऊ धर्मनिस्वरूप है। जातैं विशेषणके योग्य विशेष्य होय सो ऐसा ही होय। बहुरि इस विशेषणपणांकै साधनेकूं विशेषण (विशेष्य) है, सो कैसा है? विशेष्यः शब्दगोचरः कहिये शब्दका विषय है अर्थात् जो शब्दकरि कहिये ऐसा विशेष्य विधिप्रतिषेधस्वरूप ही होय। अब याका उदाहरण कहैं हैं—जैसे साध्यका धर्म हेतु है सो अपेक्षाकरि विधिप्रतिषेधस्वरूप ही होय। जहां साध्यकूं साधै तहां तौ हेतु होय अर जहां साध्यकूं नांहीं साधैं तहां ही अहेतु होय। जैसे शब्दकूं अनित्य साधिये तब कृतकपणां ताका धर्मकूं हेतु होय सो ताकै अनित्यपणां साधै। बहुरि सो ही कृतकपणां शब्दकूं नित्य साधनेमैं अहेतु होय। तथा जहां अग्निमानपणां साधिये तहां धूमवानपणां हेतु है सो ही ताके विपक्ष जलके निवासविषैं अहेतु है ऐसैं जानना। ऐसैं विधिप्रतिषेधस्वरूप जीवादिक पदार्थ हैं सो शब्दगोचर हैं ऐसा सिद्ध होय है॥ १९॥

आगैं पूछै हैं—जो च्यार भंग तौ स्पष्ट किये बाकी तीन भंग कैसैं प्राप्त करणें, ऐसैं पूछैं आचार्य उत्तर कहैं हैं—

शेषभंगाश्च नेतव्या यथोक्तनययोगतः ।
न च कश्चिद्विरोधोऽस्ति मुनीन्द्र ! तव शासने ॥ २० ॥

अर्थ—शेषभंगाः कहिये बाकीके तीन भंग हैं ते पूर्वैं जे अस्तित्व नास्तित्वकी दोय कारिकामैं नय कही ताके योगतैं प्राप्त करणें, तहां हे मुनीन्द्र ! तुम्हारे शासन कहिये आज्ञा-मत तामैं किछू भी विरोध नाहीं है । यहां कारिकामैं शेष वचन है सो उत्तरके तीन भंगनिकी अपेक्षा है जातैं पहली दोय कारिकामैं अस्तित्त्व नास्तित्त्व दोऊ ही अपने अपने प्रतिपक्षीकी अपेक्षा विशेषणपणां हेतुतैं साधे । बहुरि या कारिकातैं पहलैं कारिकामैं विधिप्रतिषेधस्वरूप विशेष्यवस्तुकूं शब्दगोचरतैं साध्या सो यहू तीसरा भंग साध्या सो याकूं भी विशेषणपणां हेतुतैं अपना प्रतिपक्षीकी अपेक्षा विधिनिषेधरूप जाननां । बहुरि तैसैं सामर्थ्यतैं अवक्तव्य ही अपणां प्रतिपक्षी वक्तव्य धर्म ताकी अपेक्षा विशेषणपणां हेतुतैं विधिनिषेधरूप जानना, ऐसैं च्यार भंग तौ यह अर शेष तीन भंग अस्तित्त्वावक्तव्य, नास्तित्त्वावक्तव्य, अस्तित्त्वनास्तित्त्वावक्तव्य ऐसैं अपने अपने प्रतिपक्षीकी अपेक्षा विशेषणपणां हेतुतैं विधिप्रातिषेधरूप जाननें, 'विशेषणत्त्वात्, ऐसा नययोग है सो सर्वके लगावणां जातैं एकधर्मी जीवादिक वस्तुविशेषनिविषैं एक धर्म विशेषण है ऐसैं सर्वज्ञके मतमैं किछू भी विरोध नाहीं है अपने प्रतिपक्षी धर्मतैं अविनाभावी विशेषणकूं जे अन्यवादी नाहीं साधै हैं तिनहींके मतमैं विरोध आवै है ॥ २० ॥

आगैं अब आचार्य कहैं हैं—विधिनिषेधकरि अवस्थित नाहीं ऐसा अनेकान्तात्मक वस्तु है सो सप्तभंगी वाणीकी विधिका भागी है सो ही अर्थक्रियाका कहनेवाला है। बहुरि अन्यप्रकार नाहीं है। जो अस्ति ही है तथा नास्तित्व ही है ऐसी कल्पना सर्वथा एकान्तरूप करै है सो असत्

कल्पना है—वस्तुका रूप नाहीं। ऐसैं अपने पक्षका साधन अर परपक्षका दूषणरूप बचनकूं समेटता संता—संकोचता संता कहैं हैं—

एवं विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत्।
नेति चेन्न यथा कार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः ॥ २१ ॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्तप्रकार न्यायकरि सप्तभंगीविधिविषैं विधि निषेधकरि अनवस्थित जीवादिक वस्तु हैं सो अर्थकृत् कहिये अर्थक्रियाकूं करैं हैं—कार्यकारी हैं। बहुरि नेति चेत् कहिये अन्यवादी ऐसैं नाहीं (मानैं) तौ तिनकै बाह्य अंतरंग उपाधि कहियें कारणनिकरि कार्य तिन वादीनिनें मान्या है तैसैं नाहीं होय है। तहां जीवादि वस्तु सत् ही है अथवा असत् ही हैं ऐसैं सर्वथा न होय किन्तु कथंचित् सत् हैं अर कथंचित् असत् हैं ऐसैं होय ताकूं अनवस्थित कहिये सो ही वस्तु कार्यकरनेवाला है। बहुरि जो अन्यवादी सर्वथा एकान्तकरि सत् ही है अथवा असत् ही हैं ऐसा अवस्थित कहैं हैं तिनकै तिननें जैसा कार्यसिद्ध होना बाह्य अंतरंग सहकारी कारण अर उपादानकारणकरि मान्या है तैसा नाहीं सिद्ध होय है। याकी विशेष चरचा अष्टसहस्रीतैं जानना ॥ २१ ॥

आगैं तर्क—जो वस्तु अनेक धर्मस्वरूप मान्या तहां अस्तित्व आदि धर्मनिकै धर्मीकरि सहित उपकार्य-उपकारकभाव होतैं संतैं धर्मनिकै उपकार धर्मी करैं है कि धर्मीकै उपकार धर्म करै है। तहां भी धर्मी एक शक्तिकरि करै है कि अनेक शक्तिकरि करै है ?। तहां भी वादी दूषण बतावै तिन सर्वहीका निराकरण करते संतैं आचार्य कहैं हैं—जो एकधर्मीविषैं अनेक धर्म हैं तातैं कथंचित् सर्व प्रकार संभवै है धर्मधर्मीकै अंग-अंगीभाव है तातैं अनेकांत कहनेमैं विरोध नाहीं है—

धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनंतधर्मणः।
अंगित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्तानां तदङ्गता ॥ २२ ॥

अर्थ—अनंत धर्म जामैं पाइये ऐसा जो जीव आदिक एक धर्मी ताकै एक एक अस्तित्व आदि धर्मविषैं अन्य ही अर्थ हैं भिन्न भिन्न कार्य हैं प्रयोजन हैं। सो वे प्रयोजन कहा है? तहां कहिये—तिसकी प्रवृत्ति आदिक होना अथवा तिसका ज्ञान होना है बहुरि एक ही प्रयोजन सर्व धर्मनिकै नाहीं है जाकरि भेदाभेद पक्षकरि दूषण आवै। परन्तु कथंचित् भेदाभेदात्मक है, अनंतधर्मात्मक वस्तु जात्यंतर है, धर्मनिके स्वरूप सिवाय एक न्यारा जात्यंतर है तहां विरोधका अवकाश नाहीं। बहुरि तिन अस्तित्व आदि धर्मनिविषैं एक धर्मकैं अंगीपणां कहियें प्रधानपणां होतैं संतैं शेष अनंत धर्मनिकैं तिसका अंगपणां कहिये गौणपणां होय है। तातैं अन्य अन्यका प्रयोग युक्त है। धर्म, धर्म प्रति धर्मीकै कथंचित् स्वभावभेद बणैं है तातैं वस्तुविषैं परमार्थतैं अस्तित्व आदि धर्मनिकी व्यवस्था अंगीकार करणीं याहीतैं अस्तित्व आदि सप्तभंगनिकी प्रवृत्ति है सो सुनयकै अर्पणतैं हैं। ऐसैं 'स्यात् अस्त्येव जीवादिः, इत्यादि सप्तभंगनिका प्रयोग युक्त है ॥२२॥

आगैं अब एकपणां, अनेकपणां आदि सप्तभंगीविषैं भी ये ही प्रक्रिया प्रकट करते संते आचार्य कहैं हैं—

एकानेकविकल्पादावुत्तरत्रापि योजयेत्।
प्रक्रियां भंगिनीमेनां नयैर्नयविशारदः ॥ २३ ॥

अर्थ—नयनिविषैं प्रवीण जे स्याद्वादी सो यहु सप्तभंगी प्रक्रिया है ताहि उत्तर प्रकरणविषैं एकपणां अनेकपणां इत्यादि विकल्पविचारविषैं भी नयनकरि युक्त करै। तहां स्यात् कहिये कथंचित् जीवादिक वस्तु एक ही हैं सत् द्रव्यनयकी अपे-

क्षाकरि। बहुरि सत् पर्यायनयकी अपेक्षाकरि एक नाहीं है। यहां कोई कहै—द्रव्य तौ अनंत हैं एक द्रव्य कैसे कही? ताको उत्तर ऐसो—जो परमसंग्रहनय एक सन्मात्रका ग्राहक है ताकी अपेक्षाकरि एक कहनेमैं दोष नाहीं। बहुरि कथंचित् जीवादिक वस्तु अनेक ही हैं जातैं भेदरूप न्यारे न्यारे देखिये हैं। बहुरि क्रमकरि अर्पण किया जो एकपणां, अनेकपणां, तातैं कथंचित् एकानेकस्वरूप है। बहुरि युगपत अर्पण किया जो एकपणां, अनेकपणां ताकरि कथंचित् अवक्तव्य है। तैसैं ही कथंचित् एकावक्तव्य, कथंचित् अनेकावक्तव्य अर कथंचित् एकानेकावक्तव्य है। ऐसैं सप्तभंगीप्रक्रिया योजनी। बहुरि जैसैं पूर्वैं अस्तित्वकूं नास्तित्त्वकरि अविनाभावी विशेषणपणां हेतुकरि साधारण कह्या था तैसैं यहां एकपणां, अनेकपणां आदि सप्तभंगीनिविषैं भी अपणां प्रतिपक्षीनिकरि विशेषणपणां हेतुतैं अविनाभावी साधना। ऐसैं एकत्त्व अनेकत्त्वनिकरि अनवस्थित जीवादिक वस्तु सप्तभंगीवाणीविषैं प्राप्त किया कार्यकारी है। सर्वथा एकान्तविषैं क्रमाक्रमकरि अर्थक्रियाका विरोधहै तातैं कार्यकारी नाहीं है ऐसैं जानना ॥ २३ ॥

चौपाई।

स्वामि समन्तभद्रकी वाणि, सप्तभंगकी विधिमय जाणि।
सेवो रविकर सम भवि भरि, मिथ्यातमकूं करि है दूरि ॥१॥

इति श्री आप्तमीमांसा नाम देवागम स्तोत्रकी
संक्षेप अर्थरूप देश भाषामय वचनिका-
विषैं प्रथम परिच्छेद पूर्ण हुआ।

दूसरा—परिच्छेद।

दोहा।

अद्वैतादिविकल्पपरि, सप्तभंग सुविचारि।
कहैं मुनी तिनकूं नमूं, मंगलवचन उचारि॥ १॥

अब एकानेकविकल्पपरि सप्तभंगके द्वितीयपरिच्छेदका प्रारंभ है तहां प्रथम ही अद्वैतएकान्तपक्षविषैं दूषण दिखावै हैं—

अद्वैतैकांतपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुद्ध्यते।
कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात् प्रजायते॥ २४॥

अर्थ—अद्वैतएकांतपक्ष होनेतैं कर्ता, कर्म आदि कारकनिके बहुरि कियानिके भेद जो प्रत्यक्षप्रमाणकरि सिद्ध हैं सो विरोधरूप होय हैं। बहुरि सर्वथा यदि एक ही रूप होय तौ आप ही कर्ता आप ही कर्म होय नाहीं। अर आपहीतैं आपकी उत्पत्ति हू नांहीं होय।

अद्वैत नाम एकस्वरूप होय ताका है। जातैं दोयकरि युक्त होय सो द्वीत है, बहुरि द्वीत ही होय सो द्वैत है अर द्वैत न होय सो अद्वैत है ऐसा अद्वैतशब्दका व्याख्यान है। ताका एकांत होय वही अद्वैत है ऐसा अभिप्राय है, सो यह अद्वैतएकांतपक्ष है तिसके होतैं संतैं दृष्ट कहिये साक्षात् तथा अनुमानगोचर भेद है सो विरोध्या जाय है तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि सिद्ध जो कर्ता आदि कारकनिका भेद अर स्थान (ठहरना) गमन आदि अचलन तथा चलनरूप क्रियाका भेद प्रसिद्ध है सो कैसैं निषेध्या जाय? अपि तु नाहीं निषेध्या जाय। वेदांती एक ब्रह्मतैं भये कर्ता कर्म आदिकका भेद मानैं है सो सर्वथा नित्य एक ब्रह्म का होना

वास्तवमैं संभवै नाहीं । जातैं कर्ता क्रिया आदिमैं तौ उपजना विनशना है सौ यह मानिये तौ ब्रह्म अनित्य ठहरै अर द्वैतका प्रसंग आवै तथा उपजना, विनशना एकहीकैं आपहीतैं अन्य कारण विना होय नाहीं । यदि ये भेद अविद्यातैं मानैं तौ अविद्याकूं तौ अवस्तु मानैं है अर अवस्तुकै कार्यकारणविधान संभवै नांहीं । बहुरि अविद्याकूं यदि वस्तु मानैं तौ द्वैतपणां आवै इत्यादि प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणतैं विरोध आवै है ताकी चर्चा अष्टसहस्रीतैं जाननी ॥ २४ ॥

आगैं इस अद्वैतपक्षविषैं ही अन्य दूषण दिखावते संते आचार्य कहैं हैं—

कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत् ।
विद्याविद्याद्वयं न स्याद्बन्धमोक्षद्वयं तथा ॥ २५ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त अद्वैतएकान्तपक्षतैं लौकिक अर वैदिक कर्म अथवा शुभ—अशुभकर्मका आचरण अथवा पुयण—पाप कर्म ऐसा कर्मद्वैत न ठहरै । बहुरि कर्मद्वैतका फल भला—बुरा, सुख—दुखका द्वैत न ठहरै । बहुरि फल भोगनेका आश्रय यह लोक न ठहरै । यदि यहां ऐसा कहै जो कर्म आदिका द्वैत अविद्याके उदयतैं है तौ तहां उत्तरमैं कहिये है कि धर्म—अधर्मका द्वैतका अभाव होतैं विद्या—अविद्याका द्वैत संभवै नाहीं । बहुरि विद्या—अविद्या नाहीं तब बंध—मोक्षके द्वैतका अभाव होय । बहुरि यदि विद्या—अविद्या भी कल्पित मानैं तौ शून्यवादीकी कल्पना भी मानना ठहरै सो यह युक्त नाहीं । परीक्षाप्रधानी तौ परमार्थरूप किछू फल विचारि प्रवर्तैं हैं । पुण्य—पाप, सुख—दुख, यहलोक—परलोक, विद्या—अविद्या, बंध—मोक्ष ऐसैं विशेषरहित तत्व तौ परीक्षावान आदरै नांहीं । शून्यवादकूं कौन आदरै ? ॥ २५ ॥

आगैं अद्वैतवादी कहैं कि हम ब्रह्म-अद्वैत मानैं हैं सो प्रमाणतैं सिद्ध भया मानैं हैं। तहां अनुमान प्रमाण तौ ऐसा है जो प्रतिभासमैं नाना वस्तु आवै हैं सो प्रतिभासस्वरूप भयें प्रतिभासमैं प्रवेशरूप ही हैं जैसैं प्रतिभासका स्वरूप है, तैसैं ही ते नाना हैं, सुख प्रतिभासै हैं, रूप प्रतिभासै है ऐसैं है यामैं कछू बाधा नाहीं है। बहुरि आगम जो वेद तातैं भी ऐसा ही सिद्ध होय है जातैं भेद है। वेदमैं ऐसा कह्या है–ब्रह्म–शब्दकरि समस्त वस्तु कहिये हैं। बहुरि वेदके जो उपनिषद वचन हैं तिनमैं ऐसा कह्या है–जो यह ग्राम आराम आदिक सर्व हैं ते सर्व ब्रह्म हैं नाना किछू भी नाहीं है, लोक नानाकूं देखै है, तिस ब्रह्मकूं नाहीं देखै है सो लोककै अविद्या है, इत्यादि, ताकै प्रति उत्तरद्वारा निषेध-करनेके इच्छुक आचार्य कहैं हैं—

हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद् द्वैतं स्याद्धेतुसाध्ययोः।
हेतुना चेद्विना सिद्धिर्द्वैतं वाङ्मात्रतो न किम् ॥ २६ ॥

अर्थ—हे अद्वैतवादी ! जो तू हेतुतैं अद्वैतकी सिद्धि मानेगा कि "जो सर्व नाना वस्तु दीखै हैं सो प्रतिभासमैं सर्व गर्भित भये, प्रतिभासवाली होनेंतैं" ऐसैं तौ हेतु अर साध्य दोय ठहरै, तब द्वैतपणां आया। बहुरि यदि हेतु विना आगममात्रतैं अद्वैतकी सिद्धि मानैं तौ द्वैतता हू वचनमात्रतैं कैसैं न होय। तथा आगम अर अद्वैतब्रह्म ऐसैं दोय ठहरै तब द्वैतपना क्यों न आवै ॥ २६ ॥

आगैं अन्य दूषण दिखावै हैं—

अद्वैतं न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना।
संज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित् ॥ २७ ॥

अर्थ—हे अद्वैतवादिन् ! अद्वैत है सो द्वैत विना नाहीं हो सकै। अद्वैत शब्द है सो अपना अर्थका प्रतिपक्षी जो परमार्थस्वरूप द्वैत

ताकी अपेक्षातैं है। जातैं यह अद्वैतशब्द निषेधपूर्वक अखंड पद है, जैसैं अहेतु शब्द है सो हेतु विना न होय है तैसैं। जहां एक अर्थका वाचक एकपद होय ताकूं अखंड पद कहिये सो यहां निषेधपूर्वक द्वैतशब्दका पृथक दोय अर्थ परमार्थभूत नांहीं हैं एक ही अर्थ है। तातैं अपना प्रतिपक्षी जो द्वैत ता विना न होय। बहुरि जहां अखर-विषाण ऐसा शब्द होय ताकरि अतिप्रसंग नाहीं है। जातैं या विषाण शब्दका निषेध है सो खर शब्दकरि सहित भया तब अखंड पद न रह्या खरविषाण शब्द भया सो खंड पद भया तब याका अर्थ किछू वस्तु नांहीं ताका निषेधे भी वस्तु नांहीं ताके समान यह अद्वैत शब्द है नांहीं याका तौ प्रतिपक्षी द्वैतशब्द है ताका परमार्थभूत अर्थ विद्यमान है। ऐसैं निषेधपूर्वक अखंड पद जो द्वैत ता विना अद्वैत नाहीं है। याहीतैं सामान्यवचन ऐसा है—जो संज्ञावान पदार्थ प्रतिषेध्य कहिये निषेध करने योग्य वस्तु तिस विना प्रतिषेध कहूं नांहीं होय है। जो अखरविषाणकी तरह होय तौ ताका संज्ञावान पदार्थ ही नाहीं तातैं ऐसा शब्द प्रतिषेध्य विना भी होय है। बहुरि कहै कि दूसरेनें मान्या जो अविद्याके कारण द्वैत ताका प्रतिषेधतैं अद्वैत सिद्ध होय है तब तेरे यहां द्वैत की सिद्धि कैसैं न होय? बहुरि अद्वैतवादी कहै—जो हम अविद्याकूं वस्तुभूत मानैं नाहीं, प्रमाणतैं अविद्या सिद्ध होय नाहीं, यातैं द्वैतकी सिद्धि न होय। जो ब्रह्मकूं अविद्यावान मानिये तौ बड़ा दोष आवै। बहुरि ब्रह्मकूं निर्दोष मानिये तौ अविद्याकै अनर्थकपणां आवै। बहुरि याकै अविद्या नाहीं है ऐसा अस्तित्व अविद्याका अविद्याहीमैं कल्पिये है। बहुरि यह अविद्या ब्रह्मद्वारैं तीसरी है ऐसा कोई प्रकार भी सिद्ध न होय है। बहुरि अनुभवतैं अविद्या है ऐसैं ब्रह्म अनुभव-सहित होय है। तातैं प्रमाणरूप ज्ञानतैं बाधित अविद्या होय तौ

अविद्याकै अध्यात्मपणेका प्रसंग आवै है। बहुरि ब्रह्मकूं जानें विना अविद्याकूं कैसैं जानैं ? बहुरि ब्रह्मकूं जाणें अविद्याका अनुभव विना बाधना न होय है जातैं वस्तुभूत होय तब बाधा संभवै है। बहुरि अविद्यावान पुरुष अविद्याकूं निरूपण करनेकूं समर्थ न होय तातैं वस्तुके वर्तनकी अपेक्षा तौ अविद्या थपैं नांहीं जातैं वस्तु विना अन्यविषैं प्रमाणका व्यापार होय नाहीं। अर अविद्या वस्तु है नांहीं तातैं अविद्याकै अविद्यापणांविषैं असाधारण लक्षण ऐसा है जो 'प्रमाणकी बाधाकूं सहवेकूं समर्थ नाहीं, ऐसा जाका स्वभाव है सो अविद्या है' सो संसारीकै स्वानुभवकै आश्रय है तातैं अद्वैतवादीकै कछू दोष नांहीं आवै है। बहुरि द्वैतवादी संसारी है सो माया प्रपंच प्रमाण बाधित हैं ताकूं अनेकप्रकार कल्पै है यातैं द्वैतवादीकै अनेक दोष आवैं हैं ? ताकूं कहिये—जो सकलप्रमाणसूं अतीत अविद्याकूं अंगीकार करै सो काहेका परीक्षावान है। अविद्याकै भी कथंचित् वस्तुपणां मानि प्रमाणका विषयपणां मानैं। प्रमाणतैं सत् असत् का निश्चय करै सो ही परीक्षावान है। बहुरि शब्दाद्वैतवादका तथा संवेदनाद्वैतवाद एकान्तपक्षका भी ब्रह्माद्वैतपक्षके समान निराकरण जानना ॥ २७ ॥

आगैं कोई कहै—जो अद्वैत एकान्तका निराकरण किया है तौ हम प्रथक्त्व—एकान्त अंगीकार करैंगे ताकूं आचार्य कहैं हैं—जो ऐसैं अवधारण मत करो जातैं प्रथक्त्व—एकान्त भी बाधासहित है सो ही दिखावैं हैं—

पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि पृथक्त्वादपृथक्तु तौ ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्यादनेकस्थो ह्यसौ गुणः ॥ २८ ॥

अर्थ—पृथक्त्व कहिये पदार्थ सर्व भिन्न ही हैं ऐसा एकान्त पक्ष होतैं पृथक्त्वनामा गुणतैं गुण अर गुणी इन दोऊ पदार्थनिकै

पृथक्‌पणां कहिये भिन्नपणां होतैं ते दोऊ अपृथक् कहिये अभिन्न ही ठहरै हैं। ऐसैं यह पृथक्त्वनामा गुण ही नहीं ठहरै है। जातैं पृथक्त्वगुणकूं एककूं अनेक पदार्थनिमैं ठहऱ्या मानै है सो पृथक्त्वगुण कहना निष्फल भया। यहां ऐसा जानना जो वैशेषिक द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ऐसैं छह पदार्थ मानैं है। अर तिनके उत्तरभेद ऐसैं हैं जो द्रव्य नौ, गुण चौवीस, कर्म पांच, सामान्य दोय प्रकार, विशेष अनेक तथा समवाय एक है। तिनमैं गुणके चौवीस भेदनिमैं एक पृथक्त्वनामा गुण मानैं है सो यह गुण सर्व द्रव्य गुण आदि पदार्थनिकूं भिन्न भिन्न करै है ऐसा मानैं है। बहुरि नैयायिक प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान ऐसैं सोलह पदार्थ मानै है तिनकूं भिन्न भिन्न ही मानै है। तिनकै पदार्थनिका सर्वथा भिन्न पक्ष होनेतैं तिनकूं पूछिये कि पृथक्त्वनामा गुणतैं द्रव्य गुण ये दोऊ अभिन्न हैं कि भिन्न हैं? जो कहै—अभिन्न हैं तौ सर्वथा भिन्नका एकान्त पक्ष कैसैं ठहरै। बहुरि कहै—जो द्रव्य, गुण, पृथक्त्वगुणतैं भिन्न हैं तौ द्रव्य, गुण अभिन्न ठहरै। पृथक्त्वगुण न्यारा है तिसनें द्रव्य, गुणका कहा किया किछू भी नाहीं किया जातैं पृथक्त्व गुण एक है अर अनेकमैं ठहरया मानै है। ऐसैं इस कारिकाके व्याख्यानतैं सर्वथा भेदवादी नैयायिक, वैशेषिककूं सर्वथा पृथक्त्व—एकान्तपक्षमैं दूषण दिखाया॥ २८॥

आगैं अनित्यवादी बौद्धमती पृथक्त्व—एकान्त ऐसैं मानै है—जो सर्व पदार्थ परमाणुरूप, निरंश, निरन्वय, विनश्वर, भिन्न भिन्न हैं। तिनमैं काहू प्रकार मिलाप जोड़—नाहीं। ऐसा एकान्त मानैं है ताविषैं दूषण प्रगट करनेकी इच्छाकरि आचार्य कहैं हैं—

संतानः समुदायश्च साधर्म्यं च निरंकुशः।
प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्वनिन्हवे ॥ २९ ॥

अर्थ—जीव आदिक द्रव्यनिकै एकपणेका लोप मानिये तथा अपने पर्यायनितैं भी एकतारूप अन्वय न मानिये तौ संतान न ठहरै। जातैं क्रमरूप पर्यायनिमैं जीवादि द्रव्य अन्वय रूप होय सो संतान है, अर सो संतान क्षणिक पक्षकरि पर्यायानिकै सर्वथा भेद ही माननेमैं संतान परमार्थभूत न बनैं। अन्य संतानकी तरह ठहरै। बहुरि समुदाय भी न ठहरै जातैं एकस्कन्धमैं अपने अवयवनितैं एकता होय सो समुदाय है; यह समुदाय भी सर्वथापृथक्त्वपक्षमैं न बनैं। बहुरि साधर्म्य भी न ठहरै। समानधर्म जिनकै हैं तिनकैं समानपरिणामनिकी एकताकूं साधर्म्य कहिये हैं सो पृथक्त्व एकान्तपक्षमैं एकताका लोप होतैं यह भी न बनैं। बहुरि प्रेत्यभाव कहिये परलोक सो भी न ठहरै। मर मर कर फेर फेर उपजना ताकूं परलोक कहिए हैं सो दोऊ भवमैं एक आत्माका लोप मानें यह भी न बनैं। तथा वर्तमानमैं इसभवमैं भी बाल्य, यौवन, वृद्धपणां आदि अनेक अवस्था होय हैं तिनमैं एकपणांका प्रत्यक्ष अनुभव है सो यह अनुभव भी पृथक्त्वएकान्तपक्षमैं विरोध्या जाय तब देने—लेनेका व्यवहार भी नष्ट होजाय है। बहुरि संतान, समुदाय, साधर्म्य अर परलोक ये निरंकुश हैं—अवश्य हैं तथा प्रमाणसिद्ध हैं तिनका अभाव कैसैं मानिये अर एकपणांका लोप होतैं पृथक्त्व—एकान्तपक्ष श्रेष्ठ नांहीं ॥ २९ ॥

आगैं पृथक्त्वएकान्तपक्षहीविषैं अन्य दूषण दिखावते संते अचार्य कहैं हैं—

सदात्मना च भिन्नं चेज्ज्ञानं ज्ञेयाद् द्विधाप्यसत्।
ज्ञानाभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम् ॥ ३० ॥

अर्थ—ज्ञान है सो ज्ञेय वस्तुतैं सत्स्वरूपकरि भी जो भिन्न मानिये तौ दोऊ ही प्रकार असत्स्वरूप होय। ज्ञानतैं सत् भिन्न मानिये तब ज्ञान असत्रूप होय अर ज्ञेयतैं सत् भिन्न मानिये तौ ज्ञेय असत्रूप होय है। बहुरि ज्ञानतैं ही सत् भिन्न मानिये तौ ज्ञानका अभावहोतैं ज्ञेयका भी अभाव ही होय जातैं ज्ञान ज्ञेयका अविनाभाव तौ परस्पर अपेक्षातैं सिद्ध है सो एकका अभाव होतैं दूजेका भी अभाव होय। यातैं आचार्य कहैं हैं–हे भगवन्! तुह्मारे द्वेषी जे सर्वथा एकान्तवादी तिनकै बाह्य अर अंतरंग जे ज्ञेय ते कैसैं ठहरैं? । बाह्य ज्ञेय तौ घट पट आदिक अर अंतरंग ज्ञेय जीवात्मा तथा ज्ञान आदिक इन सबनिका अभाव ठहरै। तातैं पृथक्त्व–एकान्त कहनेवाले बौद्ध तथा वैशेषिककूं यह लाहना (प्रालम्भ–दूषण) सत्यार्थ है ॥ ३० ॥

आगैं बौद्धमतीकूं विशेषकरि दूषण दिखावैं हैं—

सामान्यार्था गिरोऽन्येषां विशेषो नाभिलप्यते।
सामान्याभावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः ॥ ३१ ॥

अर्थ—अन्येषां कहिये अन्य जे बौद्धमती तिनकै मतमैं गिरः कहिये वाणी—वचन हैं सो सामान्यार्थाः कहिए सामान्य है अर्थ जिनका ऐसे हैं तिन वचननिकरि विशेष जो वस्तुका निजलक्षण सो नाहीं कहिए है। तिन बौद्धमतीनकै सामान्यके अभावतैं समस्त वचन हैं ते मिथ्या ठहैर हैं। भावार्थ–बौद्ध ऐसैं मानैं है कि वचन तौ सामान्यमात्रकूं कहै है अर सामान्य वस्तुभूत नाहीं बुद्धिकरि कल्पिये हैं अर वस्तुका स्वलक्षण है सो अनिर्देश्य है वचनगोचर नाहीं, ताकूं आचार्य कहैं हैं–जो सामान्य तौ वस्तुभूत नाहीं अर विशेष स्वलक्षण है सो वचनकै अगोचर है तौ ऐसैं वचन तौ तिनकै मतमैं सर्व ही मिथ्या ठहरै। अर वचन विना मत कैसै थापै है तातैं तिनका मत भी झूठा ही है ॥३१॥

आगैं वादी कहै—जो पृथक्त्व—एकान्त निर्बाध नाहीं तातैं अद्वैत एकान्तकी तरह यह भी मति होहु। किन्तु तिन दोऊनका एकरूप एकान्त श्रेष्ठ है ऐसैं मानते वादीकूं तैसैं सर्वथा 'अवक्तव्यतत्त्व है' ऐसैं आचार्य कहैं हैं—

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—जे स्याद्वादनयके विद्वेषी हैं तिनकै जैसैं अस्तित्व, नास्तित्त्व, एकत्त्व, अनेकत्त्व, परस्पर विरोधतैं नाहीं तिष्ठै हैं तैसैं ही पृथक्त्व, अपृक्त्वभाव भी परस्पर विरोधस्वरूप हैं सो एकस्वरूप नाहीं ठहरै हैं जातैं यह भी प्रतिषेधस्वरूप है। जो दोय विरुद्ध धर्मरूप होय सो सर्वथा एकान्तपक्षमैं एकरूप न ठहरैं। बहुरि जो सर्वथा अवक्तव्यतत्त्व मानैं ताकै भी "तत्त्व अवक्तव्य है" ऐसा वचन भी कहना युक्त न होय। तातैं अवक्तव्य एकान्त मानना भी श्रेष्ठ नांहीं ॥ ३२ ॥

आगैं एकत्त्व आदिक एकान्तके निराकरणकी सामर्थ्यतैं अनेकान्त-तत्व सिद्ध भया तौहू तिसके ज्ञानकी प्राप्ति दृढ़ करनेकै अर्थ तथा कोई अनेकान्ततत्त्वविषैं अन्य प्रकार आशङ्का करै ताकै निराकरणकै अर्थ, तिसके एकत्वानेकत्त्वके सप्तभंग प्रकट करनेके इच्छुक आचार्य तिसके मूल दोय भंगस्वरूपकूं जीवादिवस्तुकै कहैं हैं—

अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तु द्वययोगतः।
तदेवैक्यं पृथक्त्वं च स्वभेदैः साधनं यथा ॥ ३३ ॥

अर्थ—हि कहिये निश्चयतैं पृथक्त्व अर एकत्व हैं ते परस्पर अपेक्षारहित होय तौ दोऊ ही अवस्तु ठहरैं [जातैं अवस्तु ठहरै] जातैं दोऊकै अवस्तुपणांका साधक परस्पर निरपेक्षपणां हेतु है। एकतत्त्वकी अपेक्षा विना पृथक्त्व अवस्तु है बहुरि पृथक्त्वकी अपेक्ष।

विना एकत्व अवस्तु है। ऐसैं निरपेक्ष दोऊ ही अवस्तु ठहरै हैं। बहुरि परस्पर सापेक्ष दोऊ हेतुतैं सो ही पृथक्त्व अर एकत्व परमार्थ हैं, वस्तु हैं। यहां दृष्टान्त–जैसैं साधन कहिये हेतु ताका स्वरूप बौद्धमती पक्षधर्म, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्ति ऐसैं अपने तीन भेदनि–करि विशिष्ट एक मानै हैं। ताकै भी अन्वय, व्यतिरेक, ये दोय भेद मानैं हैं। तहां जो दोऊ परस्पर सापेक्षपणांहीतैं दोऊ वस्तुभूत साधन ठहरै। तैसैं ही पृथक्त्व अर ऐक्य दोऊ सापेक्ष ही वस्तुरूप हैं निरपेक्ष अवस्तु हैं। यहां कोई पूछै–जो पृथक्त्व ऐक्यके एकान्तका निषेध तौ पहले किया ही था फेर यह कारिका कौन अर्थ कही ताका समाधान–जो इसका विधि–निषेध के अनुमानका प्रयोग जनावनेकूं फेर स्पष्ट-करि कह्या है, परस्पर निरपेक्ष सापेक्षकै दोऊ हेतु जताये हैं। बहुरि साधनका उदाहरण है सर्वमतनें साधनकूं अन्वय व्यतिरेकस्वरूप मान्या है सो परस्पर सापेक्ष विना साधन सिद्ध होय नाहीं तब अपना अपना मत कैसैं सिद्ध करैं तातैं दृष्टान्त भी युक्त है। सर्वथा एकान्त मानें किछू भी सिद्ध न होय है ॥ ३३ ॥

आगैं वादी आशंका करै है–जो एकपणांकी प्रतीतितैं तथा पृथक्-पणांकी प्रतीतितैं जीवादिकपदार्थनिकै एकपणां अर पृथकपणां कैसैं बनैं है। एकपणां तौ प्रत्यक्ष दीखै नाहीं अर पृथकपणां सत्रूप एक मानिये तौ कैसैं ठहरै ऐसैं प्रतीतिकै निर्विषयपणां आवै है। ऐसी आशंका होतैं याका विषय दिखावनेका मनकरि स्वामी समंतभद्र आचार्य कहैं हैं—

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथग्द्रव्यादिभेदतः ।
भेदाभेदव्यवस्थायामसाधारणहेतुवत् ॥ ३४ ॥

अर्थ—तु कहिये पुनः परस्परसापेक्षातैं तौ पहली कारिकाविषैं जनाया अर यहां फेर ताका विशेषणतैं आश्रयकरि कहैं हैं। सत्सामान्यतैं तौ सर्व जीव आदिक वस्तु हैं सो ऐक्य कहिये एकस्वरूप हैं यातैं एकपणांकी प्रतीति निर्विषय नाहीं है। बहुरि न्यारे न्यारे जीव आदिक द्रव्य हैं तिनके भेदतैं पृथकपणां है यातैं पृथकपणांकी प्रतीति निर्विषय नाहीं है ऐसैं भेदाभेदकी विवक्षा होतैं असाधारण हेतु मानिये है। **सामान्य** तौ अभेद विवक्षाकरि हेतु एक मानिये हैं। बहुरि भेद-विवक्षाकरि विशेष ताके पक्ष-धर्म आदि भेद मानिये हैं तैसैं जानना॥३४॥

आगैं वादी शंका करै है—जो एकपणां अर पृथकपणां भेद—अभेदकी विवक्षातैं साधे सो विवक्षा अर अविवक्षाका तौ किछू वस्तु विषय नाहीं, वक्ताकी इच्छा मात्र है। तिसके वशतैं तौ एकपणां, पृथकपणां ठहरै नाहीं। ऐसैं माननेवाले वादीकूं आचार्य कहैं हैं—

विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनंतधर्मिणि।
यतो विशेषणस्यात्र नासतस्तैस्तदर्थिभिः॥ ३५॥

अर्थ—अनंत हैं धर्म जामैं ऐसा जो धर्मी विशेष्य कहिये विशेषण जामैं पाइये ऐसा जीव आदिक पदार्थ ताविषैं विवक्षा बहुरि अविवक्षा करिये हैं सो सत् विशेषणकी करिये हैं, असत् विशेषणकी न करिये हैं। कोई पूछै कि ऐसी विवक्षा, अविवक्षा कौन करै है? ताका उत्तर—जे एकत्व, पृथक्त्व आदि विशेषणनिके अर्थी हैं ते करैं हैं। यहां विवक्षा, अविवक्षा वक्ताके पदार्थ कहने की न कहनेकी इच्छा-रूप है सो जाकूं कहने की इच्छा करै सो सत्रूप—विद्यमान होय ताहीकी करै। असत् अविद्यमानकी तौ न करै। सर्वथा असत्के कहनेकी इच्छा किये तिसतैं कहा अर्थ साधै। सर्वथा असत् तौ गधाके सींगकी तरह अर्थक्रियाकरि शून्य है। ऐसैं पदार्थमैं एकत्व, पृथक्त्व

आदि विशेषण सत्‌रूप होय तिनहींकूं तिनिके अर्थीनिकी विवक्षा, अविवक्षा होय है। असत्‌रूपकी न होय है। ऐसा जानना ॥ ३५ ॥

आगैं जो वादी ऐसैं कहैं हैं कि पदार्थनिके परमार्थतैं भेद ही है। अभेद कहिये है सो उपचारतैं है। जो दोऊ परमार्थतैं कहिये तौ विरोधनामा दूषण आवै। बहुरि कोई अन्य ऐसैं कहैं हैं—जो पदार्थनिकै परमार्थतैं अभेद ही है अर भेद कहिये है सो कल्पनामात्र है। तथा दोऊ मानें विरोध आवै है। तिन दोऊ वादीनिकूं आचार्य कहैं हैं—

प्रमाणगोचरौ संतौ भेदाभेदौ न संवृती।
तावेकत्राविरुद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया ॥ ३६ ॥

अर्थ—पदार्थनिविषैं भेद अर अभेद ये दोऊ हैं ते सत्‌रूप परमार्थभूत हैं। जातैं ये प्रमाणगोचर हैं—प्रमाणके विषय हैं। न संवृत कहिये उपचारस्वरूप नाहीं हैं। यहां भेदपक्ष, अभेदपक्ष, भेदाभेदपक्ष, ऐसैं तीन पक्ष कथंचित् परमार्थभूत सिद्ध करने। बहुरि हे भगवन्! तुह्मारे मतमैं भेद अर अभेद सत्यार्थरूप हैं ते एकवस्तुविषैं विरुद्धरूप नाहीं। जिनके मतमैं परस्पर निरपेक्षरूप भेदाभेद है तिनहींकै विरुद्धरूप होय है जातैं सवर्था एकान्त प्रमाणगोचर नांहीं है। बहुरि यहां प्रमाणगोचर कह्या सो प्रमाणका स्वरूप आगैं कहेंगे॥ ३६ ॥

ऐसैं इस परिच्छेदमैं कथंचित् अद्वैत है कथंचित् पृथक्त्व है ऐसैं मूल दोय भंग विधि प्रतिषेध कल्पनाकरि एकवस्तुविषैं अविरोधकरि प्रश्नके वशतैं दिखाये। शेष पंच भंगनिकी प्रक्रिया पूर्वैं कही तैसैं ही जोड़नी। स्यात् एकत्व-पृथक्त्व, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् एकत्व अवक्तव्य, स्यात् पृथक्त्व अवक्तव्य, स्यात् एकत्व पृथक्त्व अवक्तव्य ऐसैं पांच भंग जानने। इनके नययोग पूर्वोक्तप्रकार लगावने॥ ३६ ॥

चौपाई ।

एक अनेक पक्ष एकन्त । तजैं होय निजभाव जु संत ॥
यातैं स्वामि वचनतैं साधि । स्यादवाद धारो तजि आधि ॥१॥

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित देवागमस्तोत्रकी
देशभाषामय वचनिकाविषैं स्याद्वादस्थापनरूप
द्वितीय अधिकार समाप्त भया ।

तीसरा-परिच्छेद ।

आगैं अब नित्य, अनित्य पक्षका तीसरा परिच्छेदका प्रारंभ है ।

दोहा ।

नित्य अनित्य जु पक्षकी, कथनी का प्रारंभ ।
करूं नमूं मंगल अरथ, जिन-श्रुत-गणी अदंभ ॥ १ ॥

तहां प्रथम ही आस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, पृथक्त्व—एकान्तका प्रतिषेधकरि स्थापन किया। अब याके अनंतर नित्यत्व, अनित्यत्व एकान्तके निराकरणका प्रारंभ है । तहां प्रथम ही नित्यत्वएकान्तविषैं दूषण दिखावैं हैं--

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते ।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—नित्यत्वैकान्त कहिये कूटस्थ सदा एकसा रहै ऐसे वस्तुका अभिप्राय ताका पक्ष होतैं तिस कुटस्थविषैं विक्रिया कहिये परिणमन—अवस्थातैं अन्य अवस्था होना ऐसी क्रिया तथा परिस्पन्द कहिये चलना—क्षेत्रतैं अन्य क्षत्र प्राप्त होना ऐसी विविध अनेक क्रिया न बनैं । बहुरि कारक कहिये कर्ता कर्म आदिक तिनका कूटस्थमैं पहले ही अभाव है । अवस्था जाकी पलटै नाहीं तामैं कारककी प्रवृत्ति कैसैं बनैं । बहुरि जब कारकका अभाव ठहरया तब प्रमाण कहां अर प्रमाणका फल प्रमिति कहां ? । जातैं प्रमाता कर्ता होय तब प्रमाण अर प्रमिति भी संभवै । अकारक प्रमाता होय नाहीं । जो काहू ही

प्रति साधन न होय सो तौ अवस्तु ठहरै तब आत्माकी भी सिद्धि न होय । ऐसैं नित्य एकान्तमैं दूषण दिखाया ॥ ३७ ॥

अब आगैं सांख्यमतवादी कहैं हैं कि हम अव्यक्तपदार्थ कारणरूप है ताकूं सर्वथा नित्य मानैं हैं । अर कार्यरूप व्यक्तपदार्थ है ताकू अनित्य मानैं हैं तातैं विक्रिया बनैं है । तहां व्यक्त कहिये जो पदार्थ काहूक निमित्ततैं छिप्या होय ताका प्रकट होना ऐसीं तौ अभिव्यक्ति अर नवीन अवस्था होना सो उत्पत्ति है । ऐसैं व्यक्त पदार्थकूं अनित्य मानि विक्रिया होती कहैं हैं तामैं दूषण दिखावैं हैं—

प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत् ।
ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद्बहिः ॥ ३८ ॥

अर्थ—नित्यत्वपक्षका एकान्तवादी सांख्यमती कहै—जो व्यक्त कहिये अभिव्यक्ति अर उत्पत्तिरूप हैं ते प्रमाण अर कारकनिकरि व्यक्त—प्रगट होय हैं । यहां दृष्टान्त कहैं हैं—जैसैं इन्द्रिय अपने विषयरूप पदार्थकूं व्यक्त—प्रगट करै है तैसैं प्रमाणकारक व्यक्तपदार्थकूं प्रगट करै है ताके निषेधकूं आचार्य कहैं हैं—जो हे भगवन् ! तिन नित्यत्वएकान्तवादीनिकै तौ ते प्रमाण अर कारक भी नित्य ही हैं । तातैं सर्वथा नित्य कारणनितैं अनित्य कार्य होय नांहीं । तातैं ते वादी तुम्हारे साधु आप्तकै शासन मततैं बाह्य हैं । तिनकै विकार्य कहिये अवस्था पलटनेरूप विकार—स्वरूपकार्य कहां सिद्ध होय ? किछू भी सिद्ध न होय । जो नित्य प्रमाण कारकनितैं अभिव्यक्ति, उत्पत्तिरूप व्यक्त पदार्थनिकूं प्रगट भये कहैं तौ बनैं नाहीं तथा तिन व्यक्तनिकै भी नित्यपणां आया चाहिये सो है नाहीं ऐसैं तिनकै नित्य एकान्तपक्षमैं विक्रिया न बनैं ॥ ३८ ॥

आगैं फेर वादी कहै—जो हम कार्य—कारणभाव मानैं हैं तातैं हमारे किछू विरुद्ध नाहीं है ताकूं आचार्य कहैं हैं—यह तौ विना विचार्या

सिद्धान्त है। कार्य उपजै है तामैं दोय विकल्प हैं—या तौ सत्‌रूप उपजता कहनां कै असत्‌रूप उपजता कहनां, इन दोऊ विकल्परूप पक्षमैं दूषण दिखावैं हैं—

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति ।
परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी ॥ ३९ ॥

अर्थ—यदि कहिये जो कार्य है सो सर्वथा सत् है, कूटस्थके समान है ऐसैं कहिये जो सांख्यमती जैसैं पुरुषकूं नित्य मानै है तैसैं कार्य भी नित्य ठहरै—उपजने योग्य न ठहरै। बहुरि कहै कि वस्तुकै अवस्थातैं अन्य अवस्था होय है ऐसैं विवर्तरूप कार्य उपजै है? ताकूं कहिये—तौ वस्तु परिणामी ठहरै है सो यह परिणामकी पलटनेरूप प्रक्लृप्ति कहिये केवल कल्पना ही है सो नित्यत्व एकान्तकी बाधनेवाली है ही। बहुरि कहै कि कार्य असत्‌रूप उपजै है तौ सांख्यमतके सिद्धान्तमैं जो यह कह्या है कि असत्का करना असंभव है सो ऐसैं सिद्धान्तका विरोध आवै है। ऐसैं नित्यत्व एकान्तके वादी जे सांख्यमती आदिक तिनकै कार्य उपजनेका अभाव आवै है ॥ ३९ ॥

आगैं कार्यके अभाव होनेमैं नित्यत्व एकान्तवादीनिकै दोष आवै है तिनकूं प्रगट कहैं हैं—

पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावफलं कुतः ।
बंधमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे भगवन्! जिनकैं तुम अनेकान्तके उपदेशक आप्त नायक स्वामी नाहीं हो तिन सर्वथा नित्यत्त्वादि एकान्तवादीनिकै पुण्य-पापकी क्रिया—काय, वचन, मनकी शुभ, अशुभ प्रवृत्तिरूप तथा उपजनेस्वरूप क्रिया नाहीं बनै है याहीतैं परलोक भी नाहीं बनैं है। बहुरि क्रियाका फल सुख दुःख आदि काहे तैं होय अपि तु नाहीं

होय। बहुरि बंध अर मोक्ष ये दोऊ भी न होय। तातैं नित्यत्वएकान्तका मत है सो परीक्षावाननिकै आदरने योग्य नाहीं है। जातैं जा मतमैं पुण्य, पाप, परलोक, बंध, मोक्ष न संभवै तिस मतकूं परीक्षावान कौन प्रयोजन आश्रय करै अर्थात् नाहीं करै ॥ ४० ॥

आगैं क्षणिकमती बौद्ध कहै है—जो यह सत्य है नित्यत्वएकान्तमैं दूषण है तातैं क्षणिकका एकान्त है सो प्रतीति सिद्ध है तातैं कल्याणकारी है ऐसा कहते वादीकूं आचार्य कहैं हैं—

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसंभवः।
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—क्षणिकएकान्तका पक्ष होतैं भी प्रेत्यभावादि कहिये परलोक, बंध, मोक्ष आदि, तिनका असंभव होय है। जातैं प्रत्यभिज्ञा कहिये पहले तथा पिछले समयविषैं अवस्था होय ताका जोड़रूप ज्ञान तथा स्मरणज्ञान आदिके अभावतैं कार्यका प्रारंभ संभवै नाहीं। बहुरि कार्यके आरंभ विना पुण्य–पाप, सुख–दुख आदिक फल काहेतैं होय अपि तु नाहीं होय। अर क्षणिकनिका संतानकूं कार्यका आरंभ करनेवाला कहै तौ संतान परमार्थभूत क्षणिकएकान्तमैं संभवै नाहीं। एक अन्वयी ज्ञाता द्रव्य आत्मद्रव्य ठहरै तब संतान सत्य ठहरै सो क्षणिक पक्षमैं ऐसा है नाहीं। तातैं क्षणिकएकान्तमत हितकारी नाहीं। जातैं परलोक, बंध, मोक्ष न संभवै सो काहेका हितकारी है। जैसा नित्यत्व आदि एकान्त है तैसा ही यह है तातैं ऐसे मतकूं परीक्षावान आदरै नाहीं ॥ ४१ ॥

आगैं इस क्षणिकएकान्तपक्षविषैं सत्रूप कार्यका उपजना बनैं नाहीं। जो कहै तौ मतमैं विरोध आवै अर असत्रूप ही कार्य कहै तौ तामैं दोष दिखावैं हैं—

यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्मा जनि खपुष्पवत् ।
मोपादाननियामोऽभून्माश्वासः कार्यजन्मनि ॥ ४२ ॥

अर्थ—जो कार्य है सो सर्वथा असत् ही उपजै है ऐसैं मानिये तौ वह कार्य आकाशके फूलकी तरह मत होहु । बहुरि उपादान आदिक कार्यके उत्पन्न होनेकूं कारण हैं तिनका नियम न ठहरै । बहुरि उपादानका नियम न ठहरै तब कार्यके उपजनेका विश्वास न ठहरै । जो इस कारणतैं यही कार्य नियमकरि उपजैगा । जैसे यव अन्न उपजनेका यवबीज ही है ऐसा उपादान कारणका नियम होय तिस कारणतैं सो ही कार्य उपजनेका विश्वास ठहरै सो क्षणिकएकान्तपक्षमैं असत् कार्य मानैं तब यह नियम न ठहरै ॥ ४२ ॥

ऐसैं होतैं क्षणिकएकान्त पक्षविषैं अन्य दोष आवै हैं सो कहैं हैं—

न हेतुफलभावादिरन्यभावादनन्वयात् ।
संतानान्तरवन्नैकः सन्तानस्तद्वतः पृथक् ॥ ४३ ॥

अर्थ—क्षणिकएकान्तपक्षविषैं हेतुभाव अर फलभाव, आदि शब्दतैं वास्य कहिये वासनायोग्य, वासक कहिये वासना लेने वाला, बहुरि कर्म अर कर्मफलके संबन्ध अर प्रवृत्ति आदि ये भाव नाहीं संभवैं हैं । जातैं ये भाव अन्वय विना होय नाहीं । जैसैं भिन्न अन्य संतान है तैसैं संतानी भी भिन्न ही हैं, ते भी अन्यसंतानकी तरह हैं । बहुरि संतानी जे क्षण तिनतैं भिन्न अन्य संतानकी ज्यौं संतान किछू वस्तु है नाहीं तिन संतान निकी एकताहीकूं संतान कहिये है । ऐसैं अन्यभावतैं अन्वय विना हेतुफलभाव आदिक न बनैं । संतान संतानीकै अन्वय होय सो ही सत्यार्थ संतान है तिसहीकै होतैं हेतुफल भावादिक बनैं हैं ॥ ४३ ॥

आगैं फेर क्षणिकवादीके वचनका उत्तर आचार्य कहैं हैं—

अन्येष्वनन्यशब्दोऽयं संवृतिर्न मृषा कथम् ।
मुख्यार्थःसंवृतिर्न स्याद्विना मुख्यान्न संवृतिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—यहां क्षणिकवादी बौद्ध कहै है जो अन्यविषैं अनन्य ऐसा शब्द है सो संवृति कहिये व्यवहारमात्र उपचार करि ये हैं । भावार्थ—संतानी जे क्षण हैं तिनतैं संतान जो क्षणानिके प्रवाहकी परिपाटी, ताकूं ऐसैं कहिये है जो यह क्षणानिका संतान है सो ऐसे क्षण ही हैं तिनतैं अन्य संतान किछू परमार्थभूत नाहीं है । परमार्थ देखिये तब तौ क्षण अन्य ही हैं अर संतानतैं अनन्य कहिये हैं सो यह व्यवहार–उपचार है। ऐसैं क्षणिकवादी कहैं ताकूं आचार्य कहै हैं–जो अन्यविषैं अनन्य कहना सर्वथा ही संवृति है–उपचार है तो मृषा कहिये असत्य कैसें न होय यह तो झूठ ही है । बहुरि कहै जो संतान है सो मुख्यार्थ ही है–सत्यार्थही है तौ जो मुख्यार्थ होय सो 'संवृतिर्न' कहिये उपचार न होय है । बहुरि कहै जो संतान तो संवृति ही है । तो संवृतितैं मुख्य प्रयोजन सत्यार्थ जे प्रत्यभिज्ञान आदिक ते परमार्थभूत संतानाविना कैसे सधैं । जैसें माणवकविषैं अग्निका अध्यारोप करि उपचार करिये तब माणवकतैं अग्निका कार्य तो सधै नाहीं तैसें उपचरित संतान है सो संताननिकैं नियमका कारण न होय । बहुत संवृति उपचार है सो भी मुख्य सत्यार्थविना तो होय नाहीं । जैसें सांचा स्पंध होय तो ताका चित्राम भी होय अर सांचा स्पंध ही न होय तब ताक चित्राम भी कैसें होय । बहुरि संतान परमार्थभूत न ठहरै तब क्षण जे संतानी तिनकैं सङ्करपणा आवै है जातैं ये संतानी जे क्षण तिनकैं कार्य प्रति नियमका कारणपना न बनैं है न्यारे होय एक कार्यविषैं प्रवर्तैं तब सङ्कर दोष आवै ॥ ४४ ॥

आगें क्षणिकवादी बौद्धमती कहैं हैं जो संतान परमार्थभूत कहिये। तौ एक संतान संतानीनि तैं भिन्न है ? अथवा अभिन्न है? या भिन्नाभिन्नरूप है ? अथवा दोऊ भावनितैं रहित है ? ऐसा सिद्ध न होय है। तातैं ऐसें है सो कहैं हैं—

चतुष्कोटेर्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्तयोगतः।
तत्वान्यत्वमवाच्यं च तयोः संतानतद्वतोः॥ ४५॥

अर्थ—क्षणिकवादी बोद्ध ऐसें कहैं जो संतान अर संतानी दोऊ सत्रूप हैं ? कि असत्रूप हैं ? अथवा सत् असत् इन दोऊ रूप है ? या दोऊरूप नाहीं हैं ?। ऐसें सर्व ही धर्मनिविषैं इनचार विकल्परूप वचनके कहनेका अयोग है। किछू कह्या जाता नाही। ऐसें ही संतान, संतानीकें भी तत्पना, अन्यपना कहनेका अयोग है। जो वस्तुकूं धर्मनितैं अनन्य कहिये तो वस्तुमात्रही ठहरै। बहुरि वस्तुतैं अन्य कहिये तो इस वस्तुका यह धर्म है ऐसें कहना न बनें। दोऊ कहिये तो दोऊ दोष आवें। दोऊ रहित कहिये तो वस्तु निःस्वभाव ठहरै। यातैं संतान, संतानीकें तत्व, अन्यत्व पना अवक्तव्य ही सिद्ध होय है॥ ४५॥

ऐसें बौद्ध कहैं हैं ताकूं आचार्य कहैं हैं जो ऐसें कहने वालें कूं ऐसा कहना—

अवक्तव्यचतुष्कोटिर्विकल्पोपि न कथ्यतां।
असर्वान्तमवस्तु स्यादविशेष्यविशेषणम्॥ ४६॥

अर्थ— क्षणिकवादीकूं आचार्य कहैं हैं जो सर्वधर्मनिविषैं चार कोटिके विकल्प कहनेका वचन अयोगहै तौ चार कोटिका विकल्प अवक्तव्य है ये बचन भी मत कहो। बहुरि यदि किछू ही न कहना तब अन्यकों प्रतीति उपजोवनका भी अयोग आवै। बहुरि ऐसें होतैं

पदार्थ सर्वविकल्पनितैं रहित अवस्तु ही ठहरै है। जातैं सर्वधर्मनितैं रहित भया। तब विशेषण, विशेष्यभावतैं भी रहित भया तातैं अवस्तु ही भया॥ ४६॥

बहुरि सर्वथा विशेष विशेषण रहित होय ताका प्रतिषेधकरना भी बनै नाहीं तातैं वस्तु ही विषैं प्रतिषेध करना बनै है सो ही कहैं हैं—

द्रव्याद्यन्तरभावेन निषेधःसंज्ञिनःसतः।
असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधिनिषेधयोः॥ ४७॥

अर्थ—जो सत्तासहित संज्ञी कहिये संज्ञावान पदार्थ है ताहीका द्रव्यान्तर, क्षेत्रान्तर, कालान्तर भावान्तर इनकरि अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भावनिकी अपेक्षा निषेध कीजिये हैं। बहुरि असत्तारूपका तौ निषेध संभवै नाहीं सर्वथा अवस्तु तौ प्रतिषेधका विषय नाहीं। जातैं असत् भेदरूपहै सो तो अवस्तु है, सो तो विधि, निषेधका स्थानही नाहीं है। कथंचित् सत् विशेष पदार्थ ही विधि अर निषेधका आधार है। तातें ऐसा आया कि अन्य वादीनें मान्या जो सर्व धर्मनिकरि रहित तत्त्व सो अवस्तु है॥ ४७॥

सो पदार्थ अवक्तव्य है ऐसा कहैं हैं—

अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात् सर्वान्तैः परिवर्जितम्।
वस्त्वेवा वस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात्॥४८॥

अर्थ— जो 'सर्वान्तैः परिवर्जितं, कहिये सर्व धर्मनिकरि रहित है सो धर्मी नाही, अवस्तु है। जातैं ऐसा पदार्थ काहू प्रमाणका विषय नाहीं सो ही अनभिलाप्य कहिये अवक्तव्य है यहां क्षणिकवादी कहै जो सर्व धर्मनिकरि रहित अवस्तु अवक्तव्य है तो अवस्तु अवक्तव्य है ऐसा भी तुम कैसे कहौ हौ। ताकूं कहिये कि हम जाकूं अवस्तु कहैं

हैं सो सर्व धर्मनिकरि रहितकूं नाही कहैं हैं। सत् , असत् इत्यादि अनेकान्तात्मककूं वस्तु कहैं हैं। सो ऐसें होतें द्रव्य, क्षेत्र, काल, अपेक्षा प्रक्रियाके विपर्ययके वशतैं वस्तुकों ही अवस्तु कहैं हौं। बहुरि सर्वथा एकान्तकरि सर्व धर्मनिकरि रहित ताकूं अवस्तु माना है सो परवादीकी कल्पनाकी अपेक्षा लेकर कहनाहै। परमार्थतैं जो सर्व धर्मनिकरि रहित है तातैं अवस्तु है ऐसा कहनाभी हमारें नाहीं हैं। हमारें यहां ऐसें है— जैसें घटकू अन्य घटकी अपेक्षा अघट कहिये तैसें अन्य वस्तुकों ही अवस्तु कहिये यामें विरुद्ध नाहीं है। जैसें काहूने कह्याकि ' अब्राह्मणकूं ल्याओ, तहीं जानना कि ब्राह्मणतैं अन्य, क्षत्रियादिककूं बुलावै है। तहां ब्राह्मणका सर्वथा अभाव न कहै है। भावहीकूं अपेक्षातैं अभाव कहिये। तैसें ही वस्तुकूं अवस्तु कहना अपेक्षातैं है। जो सर्वथा सर्व धर्मनितैं रहित है सो वस्तु तो अवक्तव्य ही है ऐसें जानना ॥ ४८ ॥

आगैं क्षणिकवादीनिकूं किछू विशेषकरि दूषण दिखावैं हैं—

सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषां किं वचनं पुनः ।
संवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमार्थविपर्ययात् ॥ ४९ ॥

अर्थ—अन्यवादीनिकैं जो 'सर्वान्ता, कहिये सर्व धर्म हैं ते अवक्तव्य हैं। तिनकैं धर्मके उपदेशरूप तथा अपने तत्वका साधनरूप परके दूषणरूप वचन कहा (क्या) हैं? अपितु किछूभी नाहीं तब मौन ही सिद्ध भया। बहुरि कहै जो संवृति कहिये व्यवहारके प्रवर्तनेकूं उपचाररूप वचन हैं। ताकूं ऐसैं कहिये। कि परमार्थसे विपर्यय हैं उपचार है सो तो मिथ्या है, असत्य है। बहुरि फेर वादि कहै जो कोई मौनी ऐसैं कहै कि ' मेरे सदा मौन है, वाका ऐसा कहना मौन तैं विरोधी है तो भी अन्यकूं जनावनेकूं कहिये सो उपचार है। तैसैं सर्व

धर्म अवक्तव्य हैं तौऊ परके जतावनेकूं उपचाररूप वचनकरि 'अवक्तव्य, ऐसा वचन कहिये है। ता वादीकूं कहिए कि अवक्तव्य कैसैं हैं? स्वरूपकरि अवक्तव्य है? कि पररूप करि है?, कि दोऊरूप करि है। कि तत्वस्वरूप करि है?, या मृषास्वरूपकरि है? ऐसैं विचारिये तो कोई भी पक्ष न ठहरै है। जो स्वरूपकरि अवक्तव्य कहै तो अवक्तव्य कैसैं? जो अपना रूप है सो कहनेमैं आवै है। बहुरि पररूपकरि अवक्तव्य है तो स्वरूपकरि वक्तव्य ही ठहरै। बहुरि दोऊ पक्ष माननेमैं दोऊ दूषण आवें हैं। बहुरि तत्त्वकरि अवक्तव्य कहै तो व्यवहारकरि वक्तव्य कहना ठहरै। अर मृषापनाकरि अवक्तव्य कहना न कहना तुल्य ही है। ऐसैं बहुत कहने तैं कहा? सर्वथा अवक्तव्य कहनेमैं तो अवक्तव्य है ऐसा कहना भी न बनै है तब अन्यकूं प्रतीति उपजावनेका अयोग है॥ ५०॥

आगैं सर्वथा अवक्तव्य कहनेवाले वादीकूं कहैं हैं कि अवक्तव्य कैसैं कहै है? एसैं पूछकर दोष दिखावें हैं—

अशक्यत्वादवाच्यं किमभावात्किमबोधतः।
आद्यन्तोक्तिद्वयं न स्यात् किं व्याजेनोच्यतांस्फुटम्॥५०॥

अर्थ—अवक्तव्यवादीकूं कहैं हैं जो तू अवक्तव्य कहै है। सो अशक्यत्वात् कहिये तेरे कहनेकी सामर्थ्य नाहीं है तिसपनाकरि कहै है। कि अभाव है तातैं अवक्तव्य कहै है। कि अबोधतः कहिये तेरे तत्वका ज्ञान नाहीं है तातैं अवक्तव्य कहै है। ऐसैं तीन पक्ष पूछे। इन सिवाय अन्य पक्ष कहै तो इनहीमैं अन्तर्भूत होय हैं। तहां आदिका पक्षतो अशक्यपना अर अंतका अबोध, ये दोऊपक्ष तो बनै नाहीं हैं। तातैं क्षणिक मतका आप्त बुद्ध-सुगतकैं सर्वज्ञपना कहैं हैं तथा क्षमा, मैत्री, ध्यान, दान, वीर्य, शील, प्रज्ञा, करुणा, उपाय प्रमोद, स्वरूप दश बल

मानैं हैं ता बुद्धकैं अज्ञान, असमर्थता कैसैं बनै ?। बहुरि मध्यम पक्ष 'अभाव, है सो बौद्धमतीकूं कहैं हैं कि अब व्याज कहिये छलकरि कहा (क्या) ? प्रगटपनैं तत्त्वका सर्वथा अभाव है ऐसैं स्पष्टकरि कहो किन्तु ऐसैं कहैं ठीकपना न आवै है। मायाचारी करत अनाप्तपनाका प्रसंग आवेगा। ऐसैं सर्वथा अभाव कहतें अवक्तव्य अर शून्य मतमें किछू विशेष है नाहीं। ऐसैं बौद्धमतीकैं शून्यमतका प्रसंग आवै है। बहुरि यदि ऐसा कहैं कि क्षणक्षय तत्वका संकेत किया जाता नाहीं तातैं अवक्तव्य है। ताकूं कहिये है वस्तुका क्षणक्षय मात्र स्वरूप नाहीं सामान्य विशेष स्वरूप तथा नित्य अनित्यरूप जात्यंतर है तातैं कथंचित् संकेत करना संभवै है। प्रत्यक्षगम्य स्वलक्षणविषैं संकेत करना नाहीं है तौऊ विकल्प प्रमाणकरि गम्य है ताविषैं संकेत होय ही है। जो वचनगोचर धर्म है तिनके विषैं संकेत न संभवै ही है ऐसैं सर्वथा अवक्तव्यवादी जो क्षणिकवादी ताकैं सून्यवाद आवै है।

आगैं कहैं हैं कि याहीतैं क्षणक्षय एकान्तपक्षमैं किये कार्यका तो नाश अर विना कियेका होना प्रसंग आवै है। सो ऐसा तो उपहासका ठिकाना है—

हिनस्त्यनभिसंधातृ न हिनस्त्यभिसंधिमत् ।
बद्धयते तद्धयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते ॥ ५१ ॥

अर्थ—निरन्वयक्षणिक चित् है सो जो चित् प्राणीके घातनेका अभिप्राय करै है कि मैं या प्राणीकूं घातूं ऐसा अभिसंधिवाला चित् तौ नाहीं हनै है—नाहीं घातै है। जातैं जा क्षणमें अभिप्राय किया ताही क्षणमैं वह चित् है पीछें अन्यचित् उत्पन्न हुआ। बहुरि चित प्राणीके घातनेका अभिप्राय न करै सो अनभिसंधान चित् प्राणीकूं हनै है—घातै है। जातैं जानैं अभिप्राय किया था सो विनासि गया पीछें अन्यचित्

उपज्या तानैं हन्या। बहुरि जो चित् हिंसनेका अभिप्राय करनेवाला चित्तैं तथा हिंसनेवाले चित्तैं ऐसैं दोऊनतैं अन्य उपज्या ता चितकैं हिंसाका फल बंध था सो भया। बहुरि जिसकै बंध भया सो तो नष्ट भया तब अन्यचित् सो बंधतैं छूट्या।। ऐसैं हिंसाका अभिप्राय है सो अन्यनैं किया हिंसा अन्यनैं करी, अन्य बँध्या अर अन्य छूठ्या ऐसैं कियेका नाश अर विना किये कहनेका प्रसंग आवै है सो हास्यका स्थान है। बहुरि संतान तथा वासना कहै तो परमार्थतैं यह भी क्षणिकवादिकैं नाहीं बनै है बहुरि स्याद्वादीकैं कथंचित् सर्वभाव निर्बाध संभवै है॥ ५१॥

आगैं क्षणिक वादीनिकें इसही अर्थकूं विशेषकरि कहि दूषण दिखावैं हैं—

अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसाहेतुर्न हिंसकः।
चित्तसंततिनाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्गहेतुकः॥ ५२॥

अर्थ—क्षणक्षय एकान्तवादी नाशकूं अहेतुक कहैं हैं। जो वस्तु विनसैं है सो स्वयमेव विना हेतु विनसै है। सो ऐसा कहते हैं तो जो हिंसा करनेवाला हिंसक है सो हिंसाका हेतु न ठहस्या। बहुरि चित्तसंतानका मूलतैं नाश होना सो मोक्ष मानैं है ताकूं आठअंग हेतु तैं भया कहै है सो न ठहरै। मोक्षका अष्टाङ्गहेतु सम्यक्त्व, संज्ञासंज्ञी, वचनकायका व्यापार, अन्तर्व्यायाम, अजीव, स्मृति, ध्यान और समाधि ये हैं। तहां सम्यक्त्व कहिये बुद्ध धर्मका अंगीकार करना, संज्ञासंज्ञी कहिये वस्तुका नाम जानना, वचन कायका व्यापार, अन्तर्व्यायाम कहिये श्वासोश्वास पवनका निरोध करना, अजीव कहिये जीवका अभाव, स्मृति कहिये पिटकत्रय शास्त्रकी चिंता, ध्यान कहिये

एकाग्र होना, समाधि कहिये लय होना ऐसें अष्टांगहेतुक मोक्ष कहना न बनैं। ऐसें नाशकूं हेतु विना कहनेमें दूषण है ॥ ५२ ॥

आगैं बौद्ध कहै कि विरूपकार्य, विसदृशकार्यके अर्थ हेतु मानिये है ताकूं दूषण दिखावैं हैं—

विरूपकार्यारंभाय यदि हेतु समागमः।
आश्रयिभ्यामनन्योऽसावविशेषादयुक्तवत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—विरूप कार्य कहिये हिंसा अर बंध, मोक्ष; ताके प्रारंभके अर्थ हिंसक अर सम्यक्त्व आदिक अष्टाङ्गहेतुका समागम कहिये व्यापार मानिये हैं ऐसें बौद्ध कहैं ताकूं आचार्य कहैं हैं। कि यह हेतु मान्या सो अपने आश्रयी जे नाश अर उत्पाद तिनतैं अन्य नाहीं है। अनन्य कहिये अभेदरूप है। जो नाशका कारण सो ही उत्पादका कारण है। यामें विशेष नाहीं। ऐसें अयुक्त कहिये भाव, भावी अभेदरूप होंय तिन तैं तिनका कारण भी भिन्न न होय तैसें पहले आकारका विनाश अर उत्तर आकारके उत्पादका कारण एक ही है। तातैं जो उत्पादकूं तौ हेतुतैं मानैं अर नाशकूं अहेतुक मानैं सो कैसें बनैं। जैसे मुद्गर घटके नाशका कारण है सो ही कपालके उत्पादका कारण है। उत्पाद, नाश दोऊ ही हेतु विना नाहीं ॥ ५३ ॥

आगैं बौद्ध मतीकूं कहैं हैं कि तिहारे क्षणतैं परमाणु उपजै है कि तुम स्कंधसंतति मानू हो तो उपजै है। जो कहोगे कि परमाणु उपजै है तो यामें तो हेतु, फलभावका विरोध आवैगा जैसें विनाश हेतु विना मानू हो तैसैं उत्पाद भी हेतु विना मानो। बहुरि जो स्कन्धसंततिकूं उपज्या मानू हो तो तामें दूषण है सो दिखावैं हैं—

स्कन्धाः संततयश्चैव संवृतित्वादसंस्कृताः।
स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां न स्युः खरविषाणवत् ॥ ५४ ॥

अर्थ—स्कंधाः—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कार ये पांच स्कन्ध हैं। तहां स्पर्श, रस, गंध, वर्णके परमाणु तो रूपस्कन्ध हैं। बहुरि सविल्पक, निर्विकल्पक ज्ञान विज्ञान स्कंध हैं। अर वस्तुनिके नाम सो संज्ञास्कन्ध हैं तथा ज्ञान, पुण्य पापकी वासना है सो संस्कार स्कंध है। तिनके संतानकूं संतति कहिये सो यह स्कंधसंतति है ते असंस्कृतहैं अकार्यरूप हैं जातैं इनकैं संवृतिपना है–उपचारकरि बुद्धि-कल्पित हैं। बौद्धमती परमाणूंनिकूं सर्वथा भिन्न ही मानै है। सो संतान समुदाय आदिहैं ते कल्पनामात्र हैं तातैं तिन स्कंध संततिनिकैं स्थिति उत्पत्ति, विनाश नाहीं संभवै है। जातैं ये स्कंध संतति विना किये हैं कार्य कारणरूप नाहीं। बुद्धिकल्पितकैं काहेका स्थिति, उत्पत्ति विनाश होय ये गधाकी सींगकी तरह कल्पित हैं। तातैं पहली कारिकामैं जो कह्या था कि विरूप कार्यके लिए हेतुका व्यापार मानिये है सो कहना भी बिगड़ै है। स्कंधसंतान ही झूठे तब कौन रह्या हैं जाके अर्थ हेतुका व्यापार मानिये। ऐसैं क्षणिक एकांतपक्ष है सो श्रेष्ठ नाहीं है जैसें नित्य एकान्तपक्ष श्रेष्ठ नाहीं तैसैं यह भी परीक्षा किये सबाध है ॥ ५४ ॥

आगैं नित्यत्व, अनित्यत्व ये दोऊ पक्ष सर्वथा एकान्तकरि मानैतैं दूषण दिखावैं हैं—

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ५५ ॥

अर्थ—जे स्याद्वादन्यायके विद्वेषी हैं तिनकैं उभय कहिये नित्यत्व, अनित्यत्व ये दोऊ पक्ष एकस्वरूप नाहीं बनैं हैं जातैं दोऊ पक्षमैं विरोध हैं जैसैं जीना, मरना इनमैं विरोध है। तातैं एकस्वरूप होय नाहीं। बहुरि विरोध दूषणके भयतैं अवाच्यता कहिये अवक्तव्य एकान्त मानै

तो यह भी अयुक्त है। जातैं 'अवाच्य है, ऐसी उक्ति कहिये कहना सो भी न बनैं। ऐसैं कहैं भी अवक्तव्यपनेका एकान्त तो न रह्या ॥ ५५ ॥

ऐसैं नित्य आदि एकान्त ठहऱ्या तातैं सामर्थ्यवश अनेकान्तकी सिद्धि भई। तौऊ शून्यवादीके आशयकूं नष्टकरनेकूं तथा अनेकान्तके ज्ञानकी दृढताके अर्थ स्याद्वादन्यायका अनुसारकरि नित्यत्वादि अनेकान्तकूं आचार्य दिखावै हैं—

नित्यं तत् प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा।
क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचर दोषतः ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे भगवन्! ते, कहिये तुम जो हौ अरहंत, स्याद्वादन्यायके नायक तिनकें सर्व जीव आदिक तत्त्व हैं सो स्यात् कहिये कथंचित् नित्य ही हैं जातैं प्रत्यभिज्ञायमान हैं। प्रत्याभिज्ञान प्रमाणतैं पूर्व, उत्तर दशा विषैं 'यह सो ही है जो पूर्वैं देख्या था, ऐसैं एकपना सिद्ध होय है सीहो नित्य है। बहुरि यह प्रत्यभिज्ञान 'अकस्मात्, कहिये निर्विषय नाहीं। जातैं जाका अविछेदकरि अनुभव है! बहुरि क्षणिकवादी कहैं जो पूर्वोत्तरदशाविषैं सदृशभाव है ताकूं एकत्व मानना भ्रम है। ताके अर्थि कहिये हैं, जो पूर्वोत्तरकालकी दोऊ दशामें अन्य अन्य हैं ऐसा अनुभव काहू प्रमाणतैं सिद्ध होय नाहीं। तातैं एकत्व प्रत्यभिज्ञान ही सत्यार्थ सिद्ध होय है। बहुरि कहैं हैं जो यह प्रत्यभिज्ञान अकस्मात् नाहीं है जातैं बुद्धिके असंचारका दोष आवै है। जो या प्रत्यभिज्ञानका विषय नित्यपना न होय तो अविच्छेदरूप अनुभव न होय तब बुद्धिका संचार कैसें होय? निरन्वयविनाश होय तब एककूं छोड़ि दूसरे पै बुद्धि कैसैं जाय। जो मैं पहले देख्या था सो ही मैं वर्तमान कालमें ताहीकूं देखूं हूं ऐसैं एक द्रव्य बिना पूर्वोत्तर दशामें बुद्धिका संचार न होय। तातैं प्रत्यभिज्ञान निर्विषय नाहीं है। तातैं

ऐसा प्रत्यभिज्ञान वस्तुकूं कथंचित् नित्य साधै है। बहुरि सर्व जीवादिक वस्तु हैं सो कथंचित् क्षणिक हैं जातैं कालका भेद है यहां भी प्रत्यभिज्ञान प्रमाण ही तैं सिद्ध है जातैं क्षणिकविनाभी प्रत्यभिज्ञान होय नाहीं यह क्षणिक भी प्रत्यभिज्ञानहीका विषय है। जातैं पूर्व उत्तर पर्यायस्वरूप कालभेद न मानिये तो बुद्धिके संचारका दोष आवै। कालभेदविना बुद्धिका संचार कैसै कहिए। पूर्वदशाका स्मरण अर वर्तमानदशा का दर्शनरूप बुद्धिका संचारण पूर्वोत्तर पर्यायविषैं होय है। तबही प्रत्यभिज्ञान उपजै है। ऐसैं कथंचित् अनित्यत्व एकवस्तुविषैं सिद्ध होय है। तामैं विरोध आदि दूषण भी नाहीं हैं। दूषण आवै है सो सर्वथा एकान्त पक्षमें ही आवै है॥ ५६॥

आगैं, भगवान मानूं फेर पूछी कि जीव आदि वस्तुकें उत्पादविनाश रहित स्थितिमात्र तो कैसे स्वरूप करि है? अर विनाश, उत्पाद कैसै स्वरूपकरि हैं? बहुरि त्रयात्मक एक वस्तु कौन प्रकार सिद्ध होय हैं? ऐसैं पूछने पर मानूं आचार्य कहैं हैं—

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्॥
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत्॥५७॥

अर्थ—वस्तु है सो सामान्यस्वरूपकरि तौ न उदेति कहिये उपजै नाहीं है—उत्पाद न होय। बहुरि 'न व्येति, कहिये विनशै नाही है जातैं व्यक्त कहिये प्रकट अन्वयस्वरूप है। बहुरि विशेषस्वरूपकरि विनशै भी है, उपजै भी है। बहुरि युगपत् एकवस्तुविषैं देखिये तब उपजै है, विनशै भी है अर स्थिर भी है ऐसें तीन भावनिरूप सत् वस्तु है। तहां सामान्य स्वरूप तौ सर्व अवथामें साधारणस्वभाव है ताकूं अन्वयरूप द्रव्य कहिये है। बहुरि विशेष व्यतिरेकरूप पर्याय है। बहुरि यहां 'व्यक्त, ऐसा विशेषण है सो प्रकट प्रमाणकरि अबाधित

सामान्यविशेषरूप ऐसैं ही सिद्ध होय है, ऐसैं जनावै है। बहुरि युगपत् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीनूं कह्या सो प्रमाणका विषय है सत्‌का लक्षण ऐसाही सिद्ध होय है ॥ ५७ ॥

आगैं अन्य वादी कहैं हैं जो सत्‌का लक्षण त्रयात्मक किया सो कै तो सत् नित्य ही बनै या उपजना, विनशनारूप अनित्य ही बनै। नित्यानित्यमैं तो विरोध है। तातैं जो उत्पाद अर व्ययरूप होय है सो पूर्वैं याका किछू सत् नाहीं हैं नवीन ही उपजै है ऐसैं कहना। जो नित्यतैं पूर्व होय ताका तो नाश कैसैं हाय ?। अर पूर्व अनित्य ही था तो कार्य उपजा या विनाशि गया ताके नवीन भये कार्यमैं सत् कैसैं कहिये ?। ऐसैं तर्क करै ताकूं आचार्य कहैं हैं जो कार्यका उत्पत्तिके पहले तो भावस्वभाव ही है। सो जैसैं है तैसैं दिखावैं हैं—

कार्योत्पादः क्षयो हेतुर्नियमाल्लक्षणात्पृथक् ।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्पवत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—हेतु कहिये उपादान कारण ताका क्षय कहिये विनाश है सो ही कार्यका उत्पाद है। जातैं हेतुके नियमतैं कार्यका उपजना है। जो कार्यतैं सर्वथा अन्य है ताकैं नियम नाहीं है। बहुरि ते उत्पाद, विनाश भिन्नलक्षणतैं न्यारे न्यारे हैं—कथंचित् भेदरूप हैं। बहुरि जाति आदिके अवस्थानतैं भिन्न नाहीं हैं—कथंचित् अभेदरूप हैं। बहुरि परस्पर अपेक्षा रहित होय तो अवस्तु है—आकाशके फूलतुल्य है। यहां, जैसैं कपालका उत्पाद अर घटका विनाशकैं हेतुका नियम है। तातैं हेतुके नियमतैं कार्यका उत्पाद है सो ही पूर्व आकारका विनाश है। अर दोऊ लक्षणभेद है ही। उत्पादका स्वरूप अन्य अर विनाशका स्वरूप अन्य ऐसैं लक्षणभेदतैं भेद है ही। बहुरि सर्वथा भेद ही नाहीं है। जैसैं कपालका उत्पाद अर घटका विनाश ये दोऊ मृतिकास्वरूप

ही है तैसैं कथंचित् अभेदरूप भी हैं ऐसैं उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप वस्तु सिद्ध होय है। इन तीनूं भावनिकैं परस्पर अपेक्षा न होय तो तीनूं ही अवस्तु ठहरैं तब वस्तु सिद्ध न होय केवल उत्पाद ही मानिये तो नवीन वस्तु उपज्या ठहरै सो बनै नाहीं। बहुरि केवल विनाश ही मानिये तो तिस हीका फेर उपजना न ठहरै तब शून्यका प्रसंग आवै। बहुरि केवल स्थिति मानिये तो उत्पाद, विनाश हैं ते ही न ठहरैं। ऐसैं प्रत्यक्षविरोध आवै। तातैं कथंचित् त्रयात्मक वस्तु मानना युक्त है ॥ ५८ ॥

आगैं इस अर्थकी प्रतीतिके समर्थनकूं लौकिक जनकें प्रसिद्ध दृष्टान्त कहैं हैं—

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—घट, मौलि, सुवर्ण इनके अर्थी जो पुरुष हैं सो घटकूं तोड़ि मौलि करनेमैं शोक, प्रमोद, माध्यस्थ्यकूं प्राप्त होय हैं। सो यह सब हेतु सहित है। जो घटका अर्थी है ताकें तो घटका विनाश होनेतैं शोक भया सो शोकका कारण घटका विनाश भया। बहुरि घटकूं तोड़ि मौलि (मुकुट) बनानेमें मौलिके अर्थी पुरुषकें हर्ष भया सो वहां हर्षका कारण मौलिका उत्पाद भया। बहुरि जो सुवर्णका अर्थी है ताकें शोक अर हर्ष न भया। मध्यस्थ रह्या। जातैं घट भी सुवर्ण था मौलि भी सुवर्ण ही है ऐसैं माध्यस्थ्यका कारण सुवर्णकी स्थिति भई। ऐसैं लौकिक जनकें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वरूप वस्तु है सो प्रतीतिभेदतैं सिद्ध है ॥ ५९ ॥

आगैं, जो लोकोत्तर जैन व्रती हैं तिनकें भी गति भेदतैं ऐसैं ही सिद्ध है। ताका दृष्टान्त कहैं हैं—

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम् ॥ ६० ॥

र्थअ—जाकें ऐसा व्रत होय कि मैं आज दुग्ध ही ल्यूंगा सो तो दही नाहीं खाय है । बहुरि जाकें ऐसा व्रत होय कि मैं आज दही ही खाऊंगा सो वो दूध नाहीं पीवै है । बहुरि जा पुरुषकें गोरस न लेनेका व्रत है सो दोऊ ही नाहीं ले है । तातैं तत्व है सो त्रयात्मक है ॥

भावार्थ—गोरस ऐसा दूध अर दही इन दोऊ ही कूं कहिये है । सो वस्तु विचारिये तब तीनोंमें अभेद भी है जातैं दोऊ एक गोरसस्वरूप ही हैं । बहुरि भेद भी है । तातैं व्रती जन हैं ते ऐसैं मानैं हैं जो दूध खानेकी प्रतिज्ञा ले तब दही यद्यपि गोरस ही है तो भी तातैं भेद मानि न खाय है । तैसैं ही दही खानेकी प्रतिज्ञा ले तब दूधकूं भेद मानि न खाय है । बहुरि जो दोऊके न खाने की प्रतिज्ञा ले सो दोऊ ही न खाय । ऐसैं व्रती भी भेदाभेदरूप वस्तु मानें हैं । तातैं ऐसैं ही त्रायत्यक वस्तु प्रतीतिसिद्ध है । तातैं कथंचित् नित्य ही है, कथंचित् अनित्य ही है । ऐसैं ही कथंचित् नित्यानित्य ही है, कथंचित् अवक्तव्य ही है कथंचित् नित्य अवक्तव्य ही है । कथंचित् अनित्य अवक्तव्य ही है तथा कथंचित् नित्यानित्य अवक्तव्य ही है । ऐसैं यथायोग्य सप्तभंगि जोड़नी । जैसैं सत् आदिपर जोड़ी थी तैसैं ही नय लगावनी ॥ ६० ॥

चौपाई ।

नित्य आदि एकान्त वशाय, प्राणी भवमें भ्रमण कराय ।
तिनके उधरनकूं जिनवैन, अनेकान्तमय वरने ऐन ॥ १ ॥

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित आप्त मीमांसा नाम देवागमस्तोत्रकी देशभाषामय वचनिकाविषैं स्याद्वादस्थापनरूप तृतीय अधिकार समाप्त भया ।

अथ चतुर्थ–परिच्छेद ।

दोहा ।

भेदआदि एकान्त तम, दूरि कियो जिनसूर ॥
वचन किरणतैं तास पद, नमूं करम निरसूर ॥ १ ॥

अब यहां वैशेषिकमती भेद एतान्त पक्षकरि अपना मत थापै । ताका पूर्व पक्ष ऐसैं है—

कार्यकारणनानात्वं गुणगुण्यन्यतापि च ।
सामान्यतद्वन्यत्वं चैकान्तेन यदीष्यते ॥ ६१ ॥

अर्थ—कार्यकें अर कारणकें नानापना, बहुरि गुणकें अर गुणीकें अन्यता कहिये भेदरूप नानापना, बहुरि सामान्यकें अर 'तद्वत्' कहिये विशेषनिकें अन्यपना है ऐसें जो एकान्तकरि मानिये । ऐसा वैशेषिकमती पूर्वपक्ष करै ताका उत्तर अगली कारिकामें होगा ।

यहां कार्यके ग्रहणतैं तो कर्मका तथा अवयवीका अर अनित्यगुण तथा प्रध्वंसाभावका ग्रहण है । बहुरि कारणके कहनेतैं, समवायी समवाय तथा प्रध्वंसके निमित्तका ग्रहण है। बहुरि गुणतैं नित्यगुणका ग्रहण है अर-गुणी कहने तैं गुणके आश्रयरूप द्रव्यका ग्रहण है । बहुरि सामान्यके ग्रहणतैं पर, अपर जाति रूप समान परिणामका ग्रहण है । तथैव, तद्वत्, वचनतैं अर्थरूप विशेषनिका ग्रहण है । ऐसें बैशेषिकमती मानै है जो इन सबकें भेद ही है, ये नाना ही हैं, अभेद नाहीं हैं । ऐसा एकान्तकरि मानै है । ताकूं आचार्य कहैं हैं कि ऐसें माननेतैं दूषण आवै है ॥६१ ॥

एकस्यानेकवृत्तिर्न भागाभावाद्बहूनि वा ।
भागित्वाद्वाऽस्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते ॥ ६२ ॥

अर्थ—कार्यकें अर कारणकें बहुरि गुणकें अर गुणीकें, बहुरि सामान्य अर विशेषकें जो एकान्तकरि अन्यपना, नानापना या सर्वथा भेद ही मानिये तो एक एक द्रव्य आदि कार्यकी अनेककारणानिविषैं वृत्ति कहिये प्रवृत्तिनाहीं बनैं । जातैं कार्यादिककैं भाग कहिये खंडानिका अभाव है बहुरि जो विनाभागका सर्वस्वरूपकरि वर्तैं तो एक कार्यकैं बहुत ठहरैं सो है नाहीं । बहुरि कार्यद्रव्यकूं भागसहित खंडरूप मानिये तो कार्यकैं एकपना न ठहरै । ऐसें अरहंतमततैं अन्य जो अनार्हत, ताके, मतमें वृत्तिका दोष आवै है । अर वृत्ति अवश्य माननी चाहिये, न मानिये कार्य, कारण आदि भावनिका विरोध आवै । तहां यदि एक-देशकरि वृत्ति मानिये तो बनै नाहीं जातैं कार्यद्रव्य अर गुण तथा सामान्य इनकैं अंश मान्या नहीं, निः प्रदेशी मान्या है। बहुरि सर्वस्वरूप-करि मानिये तो जेते कारण होंय तेते कार्यद्रव्य ठहरें । जैसें एक पृथ्वीके अनेक परमाणुरूप कारणनिकरि बनै है सो ऐसें तो जेते परमाणु हैं तेते घट होय सो है नाहीं । बहुरि एक संयोग आदि गुणकैं अनेक संयोग आदि गुण ठहरें सो है नाहीं । बहुरि तैसें ही एक एक सामान्यकैं अनेक सामान्य ठहरें । ऐसें कार्यादिककी कारणादिविषैं वृत्तिका दोष आवे है तातैं सर्वथा अन्यपना कर्ताकरणादिकैं बनैं नाहीं । कथंचित् भेद माननाही निर्बाधसिद्ध होय है ॥ ६२ ॥

आगें ऐसें ही कार्यद्रव्य अवयवी आदि कैं, अवयवादिक कारणतैं सर्वथा भेद होतैं देश काल करि भी भेद ठहरै । ऐसैं कहैं हैं

देशकालविशेषेऽपि स्याद्वृत्तिर्युतसिद्धवत् ।
समानदेशता न स्यान्मूर्तकारणकार्ययोः ॥ ६३ ॥

अर्थ—अवयवी जे कार्य द्रव्यादिक तिनकैं अवयव जे कारणादिक तिनतैं सर्वथा भेद मानिये तो देश कालका विशेष होतैं भी वृत्ति ठहरै। जैसैं दोय द्रव्य जुड़ें युतसिद्धकैं वृत्ति होय तैसें ठहरै। पर्वतकैं अर वृक्षादिककैं भेदरूप वृत्ति है तैसें ठहरै सो एसैं है नाहीं। अवयवी आदिकैं अर अवयव आदिकैं तो कथंचित् भेद है। बहुरि मूर्तिक जे कारण, कार्य तिनकैं समानदेशता कहिये एकदेशपना, मानैं तो ये भी न ठहरै अत्यन्तभिन्न अनेक मूर्तिक पदार्थकैं एकदेशमें रहना कैसें बनैं। ऐसें सर्वथा भेदपक्षमें दूषण आवै है ॥ ६३ ॥

आगें फेर प्रश्नोत्तर करें हैं—

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातंत्र्यं समवायिनाम्।
इत्ययुक्तः स संबंधो न युक्तः समवायिभिः ॥ ६४ ॥

अर्थ— वैशेषिक कहै है कि समवायी पदार्थ है तिनकैं आश्रय आश्रयी भाव है यातैं स्वाधीनपना नाहीं है तातैं कार्य कारणादिक कैं देशकालादिकका भेद करि वृत्ति नाहीं है। समवायी पदार्थ तो समवायके आधीन वरतै है। आप ही देश कालके भेद करि वृत्ति कैसें करै ?। ताकूं आचार्य कहैं हैं।

कि हे वैशेषिक ! समवायी पदार्थनि करि समवाय संबंध भी तो भिन्नही है जुड़या नाहीं है सो युक्त नाहीं होय है। समवाय पदार्थ जुदा था ताकूं जुदे समवायी पदार्थनि तैं कोन नें जोड़या (मिलाया)। ऐसें सर्वथा भेद मानें तैं दूषणही आवै है ॥ ६४ ॥

आगैं, वैशेषिक कहै कि केवल समवाय सो सत्तासामान्यके समान नित्य ही है। अर कार्य उपजै है तब सत्ता समवायी मानिये है ऐसें समवायकें अर कार्यकें जोड़ है ताकूं आचार्य दूषण दिखावें हैं—

समान्यं समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तितः ।
अंतरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः ॥ ६५ ॥

अर्थ—सामान्य अर समवाय ये दोऊ नित्य हैं अर एक एक हैं। ते दोऊ यदि एक एक पदार्थविषैं समस्तपनेकरि वरतैं तदि एक एक नित्यपदार्थविषैं ही समाप्त होंय तब अन्य पदार्थमें कौन जाय अर इन दोऊनकैं अंश, अवयव मान्या नाहीं। तब अनित्य जे उपजने विनशने वाले कार्य आदि पदार्थ हैं ते सामान्य अर समवाय विना ठहरे। तब सामान्य अर समवाय ये दोऊ ही आश्रय विना न होंय तब उपजने, विनशनेवाले पदर्थनिकी कौंन विधि मानिये इनका सत्व अर प्रवर्तना न ठहरे। ऐसें दोष आवै ॥ ६५ ॥

आगें कहैं हैं कि वैशेषिककैं परस्पर सापेक्षा न मानने तैं भेदएकान्तमें पहले कहे ते, अर अब कहैं हैं सो दूषन आवै है—

सर्वथानभिसंबन्धः सामान्यसमवाययोः ।
ताभ्यामर्थो न संबंधस्तानि त्रीणि खपुष्पवत् ॥ ६६ ॥

अर्थ—सामान्यकैं अर समवायकैं वैशेषिकनैं सर्वथा संबंध नाहीं मान्या है। बहुरि तिन दोऊनितें भिन्न पदार्थ द्रव्य गुण, कर्म ये संबंधरूप नाहीं होय है जातैं परस्पर अपेक्षा रहित सर्वथाभेद मान्या है। तातैं ऐसा ठहरै है कि परस्पर अपेक्षा विना सामान्य, समवाय अर अन्य पदार्थ ये तीनूंही आकाशके फूलकी तरह अवस्तु हैं। वैशेषिकनें कल्पनामात्र वचनजाल किया है। ऐसें कार्य कारण, गुण गुणी, सामान्य विशेष इनकैं अन्यपनेका एकान्त भेदएकान्तकी तरह श्रेष्ठ नाहीं॥ ६६ ॥

आगें अन्यवादी कहै कि कार्यकारण आदिकैं तो तुम कह्या तैसैं अन्यता तथा अनन्यताका एकान्त मत होहु। बहुरि परमाणूनिकैं तो

नित्यपना है तातैं सर्व अवस्थाविषैं अन्यपनाका अभाव है तातैं अनन्यताका एकान्त है सो सदा एकस्वरूप रहै है अन्यस्वरूप कबहूं न होय। ताकूं आचार्य कहैं हैं—

अनन्यतैकांतेऽणूनां संघातेऽपि विभागवत्।
असंहतत्वं स्याद् भूतचतुष्कं भ्रान्तिरेव सा॥ ६७॥

अर्थ—परमाणूनिकैं अनन्यता कहिये अन्यस्वरूप न होनेका एकान्त, होनेतैं संघात कहिये परस्पर मिल एकान्त होतैं भी. विभाग कहिये पहलें न्यारे न्यारे विभागरूप थे ताकी तरह मिले नाहीं ठहरें, जातैं मिल स्कंध स्वरूप न भये। जो मिलकरि स्कंधरूप भये मानिये तो अनन्यताका एकान्त न ठहरै कथंचित् अन्यस्वरूप भये ठहरै। बहुरि स्कंधरूप न भये ठहरै। बहुरि स्कधरूप न भये तब पृथ्वी, जल, तेज, वायु ऐसा भूतका चतुष्टय देखिये है सो भ्रान्तिरूप ठहरै। जातैं भूतचतुष्क परमाणूनिका कार्य मानिये है सो भ्रम ठहरै॥ ६७॥

आगें, भूतचतुष्ककूं भ्रान्ति मानें दोष आवै है सो दिखावें हैं—

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिङ्गं हि कारणम्।
उभयाभावतस्तत्स्थं गुणजातीतरच्च न॥ ६८॥

अर्थ—परमाणूनिके कार्य जो पृथ्वी आदि भूतचतुष्क तिनकूं भ्रमस्वरूप मानें तैं परमाणु भी भ्रमस्वरूप ही ठहरैं हैं। जातैं कारण है सो कार्यलिंगस्वरूप है अर कार्यलिङ्गतैं ही कारणका अनुमान करिये हैं। कार्य भ्रम ठहरै तब ताका कारण भी भ्रमही ठहरै। बहुरि कार्य कारणस्वरूप जो भूतचतुष्क अर परमाणु इन दोऊनके अभावतैं तिनकैं विषैं तिष्ठते गुण, जाति, सत्व, क्रिया, विशेष, समवाय ये भी न ठहरैं। तातैं परमाणूनिकैं कथंचित् स्कंधरूप अन्यस्वरूपता मानना युक्त है।

जैसें बौद्धमतीनिकैं परमाणूनिका अन्यस्वरूप न मानना अयुक्त है। तैसैं वैशेषिकानिका भी मत सिद्ध न होय है ॥ ६८ ॥

आगें सांख्यमती कार्यकारणकूं एकस्वरूप ही मानै कथांचित् अन्यस्वरूप न मानैं तामैं दूषण दिखावैं हैं—

एकत्वेऽन्यतराभावः शेषाभावोऽविनाभुवः ।
द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृतिश्चेन्मृषैव सा ॥ ६९ ॥

अर्थ—कार्य जो महान् आदि अर कारण जो प्रधान, ताके परस्पर एकस्वरूप तादात्म्य मानते जब तादात्म्य एकस्वरूप भया तब एकका अभाव भया, एक रह्या। बहुरि एक रह्या सो दूसरैं तैं अविनाभावि है तातैं दूसरेका अभाव होतैं शेष एक रह्या था ताका भी अभाव भया ऐसैं दोऊ ही न ठहरैं हैं। बहुरि दोयपनकी संख्या मानिये है ताका विरोध आवे है यह संख्या भी न ठहरै। बहुरि यदि कहै कि द्वित्वकी संख्या तो संवृति है, कल्पना है, उपचार है। तो कल्पना उपचार है सो मृषाही है असत्य ही है ताकी कहा (क्या) चर्चा ?। ऐसैं प्रधान, महान, आदि सांख्यकाल्पितकैं अनन्यता का एकान्त माननेतैं दूषण आवै है। तथा पुरुष अर चैतन्य, इनकैं भी अनन्यताका एकान्त माननेतैं दोऊका अभाव अर द्वित्व संख्यका विरोध आवैं है। ऐसैं कार्यकारणादिकके अनन्यताका एकान्त नाहीं संभवै है ॥ ६९ ॥

आगैं, अन्यता अर अनन्यता इन दोऊ पक्षका एकान्त मानने तैं तथा अवक्तव्य एकान्त मानने तैं दूषण दिखावैं हैं —

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ७० ॥

अर्थ—स्याद्वादन्यायके विद्वेषीनिकैं अन्यता अर अनन्यता दोऊकैं एकस्वरूपपना न संभवै है । अवयव अवयवी, गुण गुणी, सामान्य विशेष आदिकके भेद अर अभेद इन दोऊनका एकस्वरूपपना न बनै है जातैं भेद, अभेदमें परस्पर विरोध है । बहुरि अवाच्यताका एकान्त भी नाहीं बनै जातैं जा एकान्तमें 'अवाच्य है,' ऐसी उक्ति भी युक्त न होय है ॥ ७० ॥

आगैं, ऐसैं अवयव अवयवी आदिका अन्यत्व आदि एकान्त जो भेदाभेद एकान्त, ताकूं निराकरण करि अब तिनकैं अनेकान्त सामर्थ्य-करि सिद्ध भया तोऊ कुवादी की आशंका दूरकरनेकूं तथा दृष्टि निश्च-यकरनेके इच्छुक आचार्य अनेकान्तकूं कहैं हैं—

द्रव्यपर्याययोरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः ।
परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावतः ॥ ७१ ॥
संज्ञासंख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषतः ।
प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा ॥७२ ॥

अर्थ—द्रव्य अर पर्याय, इनकैं कथंचित् एकपना है जातैं दोऊनकैं अव्यतिरेक है, सर्वथा भिन्नपना नाहीं है । बहुरि तिन द्रव्य पर्यायनिकैं कथंचित् नानापना है जातैं इनकैं परिणामका विशेष है, बहुरि शक्ति अर शक्तिमानपना है, बहुरि संज्ञा का विशेष है, बहुरि संख्याका विशेष है, बहुरि स्वलक्षणका विशेष है, अर प्रयोजनका भेद है । ऐसैं छह हेतुतैं नानापना है । बहुरि आदि शब्दतैं भिन्न प्रतिभास लेना, अर भिन्नकाल लेना । ऐसैं कथंचित् भेदाभेदपना है । सर्वथा नाहीं है ।

यहां द्रव्य शब्दतैं तो गुणी, सामान्य, उपादानकारण इनका ग्रहण है । बहुरि पर्याय शब्दतैं गुण, व्यक्ति, कार्य इनका ग्रहण है । बहुरि अव्यतिरेक शब्दतैं अशक्यविवेचनपनेका ग्रहण है याका यह ही अर्थ

है कि विवक्षित द्रव्य पर्यायनिकैं अन्यद्रव्यमैं प्राप्तकरनेके असमर्थपनाकूं अशक्यविवेचन कह्या, अन्यद्रव्यके गुण पर्याय अन्यद्रव्यमें न जांय, यह अर्थ है। बहुरि द्रव्य पर्यायनि कैं कथंचित् एकता कहनेमें विरोध, वैयधिकरण, संशय, व्यतिकर, शङ्कर, अनवस्था, अप्रतिपत्ति, अभाव ये दूषण नहीं आवें हैं। जातैं जैसैं एकता कही तैसैं प्रतीतिमें आव है, कल्पनाकरि वचनमात्र नाहीं कहै है। अर जो प्रतीतिसिद्ध होय तामें दूषण काहेका ?। बहुरि जहां नानापना कह्या तहां परिणामके विशेष हैं, द्रव्यका तो अनादि अनंत एकस्वभाव स्वभाविक परिणाम है। बहुरि पर्यायका सादि, सान्त अनेक नैमित्तिक परिणाम हैं। ऐसैं ही शक्तिमान शक्तिभाव जानना। बहुरि द्रव्य नाम है पर्यायनाम है ऐसा संज्ञाका विशेष है। बहुरि द्रव्य एक है पर्याय बहुत हैं ऐसैं संख्याका विशेष है। बहुरि द्रव्यतैं तौ एकपना, अन्वयपना ऐसैं ज्ञान आदि कार्य होय हैं। बदुरि पर्यायतैं अनेकपना, जुदापना आदिका ज्ञानरूप कार्य होना यह प्रयोजनकाविशेष है। बहुरि द्रव्य त्रिकाल-गोचर है पर्याय वर्तमानकालगोचर है ऐसैं कालभेद है। बहुरि भिन्न-प्रतिभास है ही, सो पूर्वोक्तविशेषनितैं ही जान्या जाय है। बहुरि लक्षणभेद भी तैसैं ही जानना। द्रव्यका लक्षण गुणपर्ययवान है। पर्यायका तद्भाव परिणाम ऐसा लक्षण है ऐसैं भेदाभेद एकान्त निरा-करण करि अनेकान्तका स्थापन किया। तहां वस्तु स्वलक्षणके भेदतैं नाना ही है। कथंचित् अशक्यविवेचनपनातैं एकरूप ही है। कथ-चित् दोऊ भाव हैं। क्रमरूप कहने तैं कथंचित् दोऊ रूप युगपत् न कह्या जाय तातैं अवक्तव्य ही है कथंचित् नानात्व अवक्तव्य ही है जातैं परस्पर विरुद्धरूप है अर युगपत् न कह्या जाय है। बहुरि कथं-चित् एकत्व अवक्तव्य ही है जातैं अशाक्यविवेचन स्वरूप है अर युग-

पत् दोऊरूप है सो कह्या न जाय है। बहुरि कथंचित् दोऊ रूप है अर युगपत् न कह्या जाय है तातैं उभय अवक्तव्य है। ऐसैं सप्तभंगी प्रक्रिया प्रत्यक्ष, अनुमानतैं अविरुद्ध जाननी ॥ ७१ । ७२ ॥

चौपाई।

नानापना एकता भाय, पक्षपाततैं मिथ्या थाय।
अनेकान्त साधें सुखदाय, ज्ञात यथा कीया जिनराय ॥ १ ॥

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित आप्त मीमांसा नाम देवागम-स्तोत्रकी देशभाषा वचनिकाविषैं सर्वथा नानपना माननेवाले एकान्तके पक्षपातीको संबोधनरूप-चतुर्थ परिच्छेद समाप्त।

अथ पंचम परिच्छेद ।

दोहा ।

एक वस्तुमें धर्म दो, साधे श्री गणधार ।
सुअपेक्षा अनपेक्ष तैं, नमों तास पद सार ॥ १ ॥

अब यहां प्रथम ही अपेक्षा अनपेक्षा के एकान्त पक्षविषैं दूषण दिखावैं हैं—

यद्यापेक्षिकसिद्धिःस्यान्न द्वयं व्यवतिष्ठते ।
अनापेक्षिकसिद्धौ च न सामान्यविशेषता ॥ ७३ ॥

अर्थ—जो धर्म्म धर्म्मी आदि कै एकांत करि आपाक्षिक सिद्धि मानिए, तो धर्म्म धर्म्मी दोऊ हीन ठहरै । बहुरि अपेक्षा बिना एकांत करि सिद्धि मानिए तो सामान्य विशेषपणां न ठहरै। तहां बौद्धमती ऐसैं मानैं हैं । प्रत्यक्ष बुद्धि में धर्म्म अथवा धर्म्मी न प्रति भासै है। प्रत्यक्ष देखें पीछें विकल्प बुद्धि होय। तिस तैं धर्म्म धर्म्मी कल्पिये है । ऐसैं कल्पना मात्र है जाकों धर्म्म कल्पिये सो ही धर्म्मी हो जाय धर्म्मी धर्म्म हो जाय। ऐसैं कहूँ ठहरै नाहीं, जैसैं शब्द अपेक्षा सत्त्व आदि कूं धर्म्म कल्पिये सो ही ज्ञेयपणां की अपेक्षा धर्म्मी हो जाय । ऐसैं विशेष्य विशेषण पणा गुण गुणी पणां क्रिया क्रियावान पणां कार्य कारण पणां साध्य साधन पणां ग्राह्य ग्राहक पणां इत्यादि परस्पर अपेक्षा मात्र ही तैं सिद्ध है । ऐसैं बौद्ध-मती की ज्यौं एकान्त करि मानिए तो दोऊ न ठहरैं, तातैं अपेक्षा मात्र सिद्धि का एकान्त सिद्ध नाहीं, श्रेष्ट नाहीं ॥ बहुरि धर्म्म धर्म्मी की सर्वथा अपेक्षा बिना ही सिद्धि नैयायिक मानै है। कहै है—धर्म्म धर्म्मी भिन्न ज्ञान के विषय हैं । इनके परस्पर अपेक्षा नाहीं ऐसैं एकान्त करि

मानैं है। ताकै भी अन्वय व्यतिरेक न ठहरै जातैं भेद अभेद है। ते परस्पर अपेक्षा बिना सिद्धि न होय। अन्वय तौ सामान्य है अर व्यतिरेक विशेष है, ते परस्पर अपेक्षा स्वरूप हैं। तिन दोऊ के परस्पर अपेक्षा न मानिये तो सामान्य विशेष भाव न ठहरै तातैं अपेक्षा अनपेक्षा ये दोऊ ही एकान्त तैं बनै नाहीं एकान्त तैं वस्तु की व्यवस्था नहीं हैं॥ ७३॥

आगें दोऊ मांनि एकान्त मानै तथा अवक्तव्य एकान्त मांनैं, तामें दूषण दिखावैं हैं

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषां।
अवाच्यतैकांतेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते॥ ७४॥

अर्थ—अपेक्षा अनपेक्षा दोऊका एकान्त मानै तौ दोऊ एक स्वरूप होय नाहीं जातैं स्याद्वाद न्यायके विद्वेषीनकैं विरोध नामा दूषण आवै है। जैसे सत् असत् एकान्त में आवै तैसैं तातैं ये भी एकान्त श्रेष्ठ नाहीं है। बहुरि अवाच्यताका एकान्त करै तो अवाच्य हैं। ऐसैं कहना ही न बणैं तातैं अवक्तव्य एकान्त भी श्रेष्ठ नाहीं॥ ७४॥

आगैं अपेक्षा अनपेक्षाका एकान्तके निराकरणकी सामर्थ्यतैं अनेकांत सिद्ध भया तौऊ कुवादी की आशंका दूर करणेंकूं अनेकांतकूं आचार्य्य कहै हैं॥

धर्म्मधर्म्यविनाभावसिध्यत्यन्योन्यवीक्षया,
न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारकज्ञापकांगवत्॥ ७५॥

अर्थ—धर्म्म अर धर्म्मी के अविना भाव है, सो तौ परस्पर अपेक्षा करि सिद्ध है। धर्म्म बिना धर्म्मी नाहीं। बहुरि धर्म्म, धर्म्मी का स्वरूप है। सो परस्पर अपेक्षा करि सिद्ध नांही है। स्वरूप है सो स्वतः सिद्ध है। आपही पहलैं ही स्वयमेव सिद्ध है जैसे कारक के

अंग कर्ता-कर्म्म आदि हैं तथा ज्ञायक के अंग ज्ञेय ज्ञायक है तैसैं कर्त्ता बिना कर्म्म नाहीं अर कर्म्म बिना कर्त्ता नाहीं । ऐसैं अपेक्षा सिद्ध है । बहुरि कर्त्ता का करनेवालापणां स्वरूप है सो पहलैं आपै आप सिद्ध है ही तैसे ही कर्म्म आपै आप सिद्ध है स्वरूप मैं अपेक्षा सिद्ध पणां है नाहीं ऐसैं ही सामन्य विशेष गुण गुणी कार्य कारण प्रमाण प्रमेय इत्यादि जानना। कथंचित् आपेक्षक सिद्ध है कथंचित् अनापेक्षक सिद्ध है कथंचित् दोऊ करि सिद्ध है कथंचित् अवक्तव्य है कथंचित् आपेक्षिक अवक्तव्य है. कथंचित् अनापेक्षिक अवक्तव्य है कथंचित् दोऊ हैं अर अवक्तव्य है। दोऊ के अविनाभाव अर निज स्वरूप हेतु लगावणा। ऐसैं सप्तभंगी प्रक्रिया पूर्वोक्त प्रकार लगावणी ॥ ७५ ॥

चौपाई ।

आपेक्षिक आदिक एकांत। मिथ्या विषवत् कह्यो सिद्धांत
जैन मुनिनके वचन जु मंत्र, सुनें जहर उतऱ्यै वह तंत्र ॥१॥

इति श्री स्वामी समंत भद्र विरचित आप्त मीमांसा नाम देवागम स्त्रोत्र की संक्षेप अर्थ रूप देश भाया मय बचनिका विषैं पांचवां परिच्छेद समाप्त भया. ॥ ५ ॥

यहां ताई कारिका पिचेहत्तर भई। आगें छठा परिच्छेद का प्रारंभ

दोहा ।

हेतु अहेतु विचारिकैं पक्षपात परिहार ।
आगम बरतायौ मुनीनमौंशीश करधार. ॥ १ ॥

अब यहां प्रथम हेतु अर आगम का एकांतपक्षविषैं दूषणभी दिखावैं हैं ।

सिद्धिं चेद्धेतुतःसर्वं न प्रत्यक्षादितो गतिः ।
सिद्धं चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थमतान्यपि ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो अपना वांछित कार्य सर्व एकांत करि हेतु तैं ही सिद्ध होना मानिये तो प्रत्यक्षादिक तैं होय है सो न ठहरै । बहुरि एकान्त करि आगम ही तैं सिद्ध होना मानिये, तौ प्रत्यक्षादि तैं विरुद्ध तथा परस्पर विरुद्ध है पदार्थ जिनकैं ऐसैं आगमोक्त मत ते भी सिद्ध ठहरैं । ऐसैं दोष आवै है यहां ऐसा जानना जो समस्त ही लौकिक जन तथा परीक्षक जन अपने आदरने योग्य उपेय तत्त्व कूँ निश्चय करि अर तिसका उपाय तत्त्व का निश्चय करैं हैं सो यहां मोक्ष के अर्थीन कूं भी मोक्षका स्वरूप का निश्चय करि अर तिसका उपाय का निश्चय करावना, वहां केई अन्यमती अनुमान ही तैं उपेय तत्त्व की सिद्धि मानैं हैं । तिनकैं प्रत्यक्षादिक तैं गति कहिये वस्तु की प्राप्ति तथा ज्ञान न होय, जातैं अनुमान होय है । जो आदि में लिंग का प्रत्यक्ष दर्शन होय तथा दृष्टान्त प्रत्यक्ष होय तब होय है । यातैं प्रत्यक्ष बिना अनुमान की भी सिद्धि नाहीं होय है-तातैं हेतु तैं एकान्त करि सिद्धि मानना श्रेष्ठ नाहीं बहुरि केई मीमांसक आदि आगम हीतैं एकान्त करि सिद्ध होना मानैं हैं । तिनकैं परस्पर विरुद्ध अर्थ जिनमैं पाइए एसैं सर्व ही मत सिद्ध ठहरैं । जातैं आगम की प्रमाणता-युक्ति हेतु आदि करि कियें बिना प्रमाण ठहरै तब सम्यक् मिथ्या का विभाग कैसैं ठहरै तातैं आगम तैं भी सिद्ध होना एकान्त करि मानना श्रेष्ठ नाहीं । ऐसैं दोऊ ही एकान्त बाधा करि सहित हैं । आगें दोऊ तैं सिद्ध मानने का एकान्त विषैं दोष दिखावैं हैं ॥ ७६ ॥

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकांतेऽप्युक्तिर्नावाच्यमितियुज्यते ॥ ७७ ॥

अर्थ—स्याद्वाद न्याय के विद्वेषी एकान्त वादीन कै हेतु अर आगम दोऊ एक स्वरुप मानना मति होहु जातैं दोऊ मैं एकान्त करि

माननैं मैं विरोध दूषण आवै है बहुरि अवक्तव्य एकान्त मानैं। अवक्तव्य है ऐसैं कहना न बणैं। कहतै वक्तव्य भी ठहरै, तब एकान्त कहना न बणैं। ऐसैं एकान्त में दूषण है आगैं हेतु का अर अहेतु का अनेकान्त कूँ दिखावैं हैं ॥ ७७ ॥

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः, साध्यं तद्धेतुसाधितं।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितं ॥ ७८ ॥

अर्थ—वक्ता अनाप्त होतैं जो हेतुतैं साध्य होय सो तो हेतु साधित है। बहुरि वक्ता आप्त होतैं तिसके बचनतैं साध्य होय सो आगम साधित है। यहां आप्त अनाप्तका स्वरूप पूर्वैं कह्या था जो दोष आवरण रहित सर्वज्ञ वीतराग है सो ऐसा अरहंत भगवान जातैं ताके बचन युक्ति आगमतैं अविरोधरूप हैं अर ताकें कहे भाषे तत्त्व प्रमाणतैं बाधे न जाय हैं। बहुरि जो दोष सहित है सर्वज्ञ बीतराग नाहीं सो अनाप्त है ताके वचन इष्टतत्व प्रत्यक्ष बाधित हैं तातैं आप्तके तो वचन ही प्रमाण करने अर अनाप्त के बचन परीक्षा करि प्रमाण करनै इत्यादि चर्चा अष्ट सहस्री तैं जानना ऐसैं कथंचित् सर्व हेतु तैं सिद्ध है। जातैं जहां आप्त के वचन की अपेक्षा नाहीं बहुरि कथंचित् आगमतैं सिद्ध है जातैं जहां इंद्रिय प्रत्यक्ष अर लिंग की अपेक्षा नाहीं इत्यादि पूर्व प्रकार की जैसें सप्तभंगी प्राक्रिया जोड़णी ॥ ७८ ॥

चौपाई।

मोक्षतत्व अर मोक्ष उपाय हेतु अहेतु कथंचित भाय
साध्यो अनेकान्त तैं भलैं तजि एकान्त पक्ष मुनि चलैं।

इतिश्री स्वामी समंत भद्र बिरचित आप्त मीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की संक्षेप अर्थरूप देश भाषा मय बचनिका विषैं छठा परिच्छेद समाप्त भया ॥ ६ ॥

इहां ताई कारिका अठहत्तर भई—आगें सातवाँ परिच्छेदका प्रारंभ ।

दोहा ।

अंतरंग वहि तत्त्व दो. अनेकान्त तैं साधि ।
वरताये तिनकूंनमूं । मिथ्या पक्ष सुवाधि ॥ १ ॥

अब इहां प्रथम ही अंतरंग अर्थ ही कूं एकान्त करि मानैं तामैं दूषण दिखावैं हैं ।

अंतरंगार्थतैकांते बुद्धिवाक्यं मृषाखिलं ।
प्रमाणाभासमेवातस्तत्प्रमाणादृते कथं ॥ ७९ ॥

अर्थ—अंतरंगार्थ कहिये अपने ही संवेदन अनुभव मैं आवै जो ज्ञान ताका एकान्त जो बाह्य पदार्थ नैं मानना, ताकै होतैं बुद्धिवाक्य कहिये हेतुवाद का कारण उपाध्याय शिष्य का वाक्य सो सर्व ही मृषा कहिये असत्य झूठा ठहरै । जातैं वाक्य है सो वाह्य पदार्थ है सो अंतरंग एकान्त मैं काहे का ठहरै । बहुरि जब बुद्धि वाक्य झूठे ठहरैं तब पर कूं प्रतीत उपजावनें कूं प्रमाण वाक्य करना सो भी प्रमाणा भास ही ठहरा बहुरि प्रमाणाभास है सो प्रमाण विना कैसे होई ? नाहीं होय ।

ऐसैं दूषण आवै । इहां अंतरंगार्थ एकान्त माननेवाला विज्ञानाद्वैत-वादी बौद्ध है सो बाह्य पदाथ माननें वालेकूं दूषण दे है सो वचनि करि दे है । अरि वचनिकूं परमार्थ भूत मानैं नाहीं तब झूंठे वचन हैं सो प्रमाण भूत नाहीं प्रमाणाभास हैं । तब दूषण देना सत्यार्थ कैसे होय बहुरि अपना स्वसंवेदनरूप अंतरंग तत्व स्वतै ही सिद्ध न होय है । जातैं स्वसंवेदनकूं अद्वैतता मानै है । तब द्वैत मानै विना साध्य साधनादि भेद नाहीं बणै है भेद मानै तौ अद्वैत एकान्त न ठहरै बहुरि स्वतः सिद्ध ठहरै । तब अन्य बाह्य तत्व मानै है तिनका मानना

सत्यार्थ ठहरै तिनकौं निषेधै तौ काहे तैं निषेधै। इत्यादि अंतरंग एकान्त माननै मैं दूषण है ॥ ७९ ॥

आगैं संवेदना द्वैतवादी बौद्धकूँ फेर दूषण दिखावैं हैं।

साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
न साध्यं न च हेतुश्च, प्रतिज्ञा हेतु दोषतः ॥ ८० ॥

अर्थ—विज्ञानाद्वैतवादी ऐसैं कहै जो साध्य साधनका विज्ञप्ति कहिये विज्ञान है ताकै विज्ञप्तिमात्रता कहिये विज्ञान मात्र पणा ही है। तातैं नतौ साध्य ठहरै न हेतु ठहरै जातैं याकै प्रतिज्ञा अर हेतुका दोष आवै है साध्य युक्त पक्षका वचन सो तौ प्रतिज्ञा, अर साधनका वचन सो हेतु, सो ताके कहनैं मैं अपने वचन ही तैं विरोध आवै है। जातैं वह विज्ञानाद्वैततत्वकूं ऐसैं साधै है। नीला पदार्थ अर नीला की बुद्धि इनका साथ ग्रहणका नियम है तातैं अभेद है। जैसै नेत्र विकारीकूं दोय चन्द्रमा दीषैं सो परमार्थतैं एक ही है। तैसै नील पदार्थ अर नील बुद्धिकूं दोय मानना भ्रम है। ऐसै अपना तत्वकूं साधै ताकैं अपने वचन ही तैं विरोध आवै है। साध्य साधनरूप संवेदन दोय देषि अर एकपणांका एकान्त कहै ताकै विरोध कैसै न आवै है। यहां धर्म्म धर्म्मीका भेद वचन कह्या संवदन दोयका वचन कह्या। बहुरि ज्ञान अर वचन ये दोय कह्या बहुरि हेतु दृष्टान्तका भेदका वचन कह्या तो अभेद कहने मैं विरोध कैसैं न आवै बहुरि वचनतैं विरोधका भय करि अवक्तव्य कहै अवक्तव्यका वचनभी वर्णै। बहुरि कहै जो अन्य कोई द्वैत मानै है ताकी मान्य के निषेध कूँ मैं भी भेदका वचन कहूं हौं तौ अद्वैत एकान्त माननेतैं तौ अन्य दूजा ठहरै ही नाहीं। निषेध कौंन कूँ है। इत्यादि दूषण आवै है। तातैं संवेदना द्वैत वादी मिथ्या दृष्टि है।

ऐसैं अंतरंगार्थ एकान्त पक्ष मैं बुद्धि वाक्य तथा सम्यक् प्रकार उपाय तत्व नाहीं संभवै है। तातैं श्रेष्ट नाहीं ॥ ८० ॥

आगैं बुहिरंगार्थ पक्ष मैं दूषण दिखावैं हैं।

बहिरंगार्थतैकांते, प्रमाणाभासनिन्हवात् ॥
सर्वेषां कार्य्यसिद्धिः, स्याद्विरुद्धार्थाभिधायिनाम् ॥८१॥

अर्थ—बहिरंगार्थ. कहिये बाह्य घट पट आदि पदार्थ तिनका एकान्त कहिये वाह्य पदार्थ ही परमार्थ भूत है। अंतरंगार्थ ज्ञान है सो परमार्थ नाहीं। ऐसा पक्ष होतैं प्रमाणाभास का लोप होय है। ताके लोप तैं सर्व ही परस्पर विरुद्ध पदार्थ का स्वरूप कहने वालेनिकैं कार्य-सिद्धि ठहरै है प्रमाण अप्रमाण का विभाग नाहीं ठहरै जातैं प्रमाण अप्रमाण स्वरूप तौ ज्ञान है सो ज्ञान परमार्थ भूत नाहीं। तब अप्रमाण काहे का विरुद्ध स्वरूप कहने वाले भी साँचे ठहरें हैं ऐसैं दोष आवै है ॥ ८१ ॥

आगैं अंतरंग बहिरंग दोऊ पक्ष मानि एकान्त मानै तथा अवक्तव्य एकान्त मानै तामैं दूषण दिखावैं हैं।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकांतेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ८२ ॥

अर्थ—स्वाद्वाद न्याय के विद्वेषीनिकैं उभय कहिये अंतरंग तत्व ज्ञान अर बाह्य तत्व ज्ञेय ये दोऊ एक स्वरूप न होय हैं जातैं इनमें परस्पर विरोधहै। बहुरि विरोधके भयस अवाच्यता कहिये अवक्तव्य पक्ष का एकान्त ग्रहण करै तो अवाच्य है। ऐसा उक्ति कहिये कहना न वणैं ऐसैं दोष है ॥ ८२ ॥

आगैं कहें है। जो दोऊ पक्ष कूँ स्याद्वादका आश्रय लेय कहै तौ दोष नाहीं है।

भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिह्नवः ।
बहि:प्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते ॥ ८३ ॥

अर्थ—भावप्रमेय कहिये ज्ञान है ते सर्व ही भेदनि सहित स्वसंवेदन रूप है अपना ज्ञानकाहू क्षयकूं जानूं। ज्ञान मात्र करि तौ अपनें आस्वाद मैं आवै है तिसकी अपेक्षा तौ सर्व ज्ञान स्वसंवेदन प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप है । प्रमाणाभास किछू भी नाहीं है । बहुरि बाह्य प्रमेय की अपेक्षा कहूं प्रमाण है कहूं अप्रमाण है । प्रमाणाभास है तहां विसंवाद होय वाधा आवै तहां तौ प्रमाणाभास है बहुरि जहां निरबाध होय तहां प्रमाण है । जातैं एक ही जीव कैं ज्ञान के आवरण के अभाव सद्भाव के विशेष तैं सत्य असत्य संवेदन परिणाम की सिद्धि है । और ते कहिये तुम्हारे अर्हंत के मत विषैं सिद्धि होय है ॥ ८३ ॥

आगे जीव ऐसा शब्द है । सो याका बाह्य अर्थ भी है तहाँ चार्वाक आदि मतवाला कहै जो जीव ही नाहीं तौ जीव ऐसा शब्द कैसैं कह्या । जीवका ग्रहण करनेवाला प्रमाण नाहीं, ऐसैं कहने वाले कूँ जीव का ग्राहक प्रमाण का सद्भाव दिखावैं हैं;—

जीवशब्दः स वाह्यार्थःसंज्ञात्वाद्धेतुशब्दवत् ।
मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च, मायाद्यैः स्वैः प्रमोक्तिवत् ॥ ८४ ॥

अर्थ—जीव ऐसा शब्द है सो बाह्य पदार्थ सहित है इस शब्द का अर्थ जीव वस्तु है । जातैं यह शब्द संज्ञाहै. नाम है जे संज्ञा हैं अर नाम हैं ते बाह्य पदार्थ बिना होय नाहीं । जैसे हेतु शब्द है सो बाह्य याका अर्थ है । वादी प्रतिवादी प्रसिद्ध है । बहुरि यहां कोई कहै माया आदि भ्रांति की संज्ञा है । तिनका बाह्य पदार्थ कहा है ताकूं कहिये मायादिक भ्रान्तकी संज्ञा हैं । ते भी अपने स्वरूप

रूप जो बाह्य अर्थ तिस सहित ही है । जैसे प्रमा कहिये प्रमाण की उक्ति कहिये संज्ञा है । तिन प्रमाणनिका बाह्यार्थ प्रत्यक्ष परोक्षआदि है । तैसें ही मायादिक भ्रान्ति भी संश-यादिक ज्ञानके भेद रूपहै । इनका बाह्यार्थ कैसे नाहीं । बहुरि इहां चारवाकमती कहै ? जो शरीर इन्द्रीयादिका समूह है सो ही जीव शब्दका अर्थ है । इनतैं भिन्न स्वरूप तो जीव वस्तु किछु है नांही ताकूं कहिये है । जो जीव ऐसा अर्थ लोक प्रासिद्ध जीवका ग्रहण है जीव चालै है जीव गया जीव तिष्ठै है ऐसा लोक प्रसिद्ध व्यवहार है सो ऐसा व्यवहार शरीर विषैं नाहीं है । इंद्रियनि विषैं नाहीं है । बहुरि बोलनाआदि शब्दआदि विषैं नाहीं है । जो इनका भोगने वाला आत्मा है ताहीविषैं यह व्यवहार है बहुरि कोऊ चारवाक मती कहै । ऐसा जीव गर्भ तैं लेय मरणपर्यंत है अनादि अनंत नाहीं । ताकूं कहिये जो जन्मतैं पहिलैं अर मरणके पीछे भी जीवका अस्तित्व है । ऐसा जीव पृथ्वी आदिकतैं उपजै नाहीं । इनतैं जीव विलक्षण है । पृथ्वी आदि जड़ है जीव चतन्य है जे चारवाक ऐसैं तैं मानैं ताके भी तत्व की संख्या लक्षणके भेद तैं है सो न बणैं । ऐसैं काय सहित जीवके विषैं जीवका व्यवहार है । बहुरि बौद्धमती क्षणिक चित् संतान विषैं जीवका व्यवहार करै । तौ यह्न भी न बणें । यातैं उपयोग स्वरूप कर्त्ता भोक्ता स्वरूप ही जीव शब्दका बाह्यार्थ है । बहुरि कोई कहै । संज्ञा हेतु तैं जीव अर्थ साध्या सो संज्ञा तौ वक्ताका अभिप्राय सारूहै । ताकूं कहिये ऐसैं नाहीं जामें अर्थ क्रिया होय सो संज्ञा का बाह्यार्थ है । कोई कहै खर बिषाण संज्ञाका कहा अर्थ है । ताकूँ कहिये अभावके विशेष की प्राप्ति याका अर्थ है सो यही भी संज्ञा बाह्य अर्थ बिना नाहीं हैं । इत्यादि जानना ॥८४॥

आगैं इसी अर्थकूं विशेष करि साधैं हैं।

बुद्धिशब्दार्थसंज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध्यादिवाचकाः।
तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बकाः ॥ ८५ ॥

अर्थ—बुद्धि शब्द अर्थ ये तीन संज्ञा हैं ते बुद्धि शब्द अर्थ ये तीन संज्ञानितैं भिन्न बाह्यार्थ है तिनका वाचक है। बहुरि बुद्धि शब्द अर्थ इनका बोध भी तीन है ते तिनतैं तुल्य हैं समान हैं। ते तिन तीनानिका प्रतिबिंबक व्यंजक है। इहां ऐसा जानना। जो पहिली कारिकामें संज्ञापणाका हेतु तैं बाह्य पदार्थ साध्या था, तहां बौद्धमती एसैं कहे है। जो जीव शब्दका हेतु बाह्यार्थ तो संज्ञापणा हेतु तैं सधै। परंतु जीव शब्द की बुद्धि और जीव शब्दका शद्व ये भी अर्थ है। ते तौ विपक्ष है तिनमैं संज्ञापणा हेतु व्यापै है। तातैं इस हेतुकै व्यभिचार आवै है ताकूं आचार्य इस कारिकामैं उपदेश देय व्यभिचार मेटया है जो संज्ञापणा हेतु तौ बाह्यार्थ सहितपणां ही कूं साधै है। बुद्धि शब्द अर्थ ये संज्ञा हैं। ते इनका बाह्यार्थ बुद्धि शब्द अर्थ है। तिनहीके वाचक हैं। और बुद्धि शब्द अर्थ इनका ज्ञान है सो भी तिन तीनानि तैं तुल्य है तो तिन वाह्यार्थनिका प्रतिबिंम्बक है दिखानेवाला है जैसे अर्थ है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द है। सो यातैं जीवकूं न हनना। ऐसैं कहै जीव अर्थ का प्रतिबिंबक बोध उपजै है। तैसैं ही बुद्धि है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द तै जीव है। ऐसा जानिये है। ऐसा बुद्धि अर्थ का प्रतिबिंबक होय है तैसे ही शब्द है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द तै जीवकूं कहैं है ऐसा ज्ञान होय है ऐसे शब्द का प्रातिबिंबक होय है। ऐसे संज्ञा तौ बाह्य पदार्थनै कहैहै। अर शब्द का अर्थ, नाम, ज्ञान, ये तीनों तिनके समान है। जे प्रतिबिंबक हैं। जातै तिन तींनून का ज्ञान करावैं हैं। ऐसे व्यभचार मेट्या है ॥ ८५ ॥

आगै विज्ञाद्वैतवादी बौद्ध कहै जो संज्ञापणा तैं शब्द कूं बाह्यार्थ सहित साध्या सो हमतौ वाह्यार्थ सिद्धि नैं करैं हैं। संज्ञा है सो भी विज्ञानही है तिस तैं भिन्न बाह्य पदार्थ तौ नाहीं है बहुरि हेतु शब्दका दृष्टान्त है सो भी साधन बिकल दृष्टांताभासहै हेतु भी विज्ञानमैं आय गया, ताकूं आचार्य उत्तर रूप कारिका कहैं हैं।

वक्तृश्रोतृप्रमातॄणां बोधवाक्यप्रमाः पृथक्
भ्रांतावेव प्रभाभ्रांतौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ ॥ ८६ ॥

अर्थ—वक्ता श्रोता और प्रमाता ये इन तीनूंनका बोध वाक्य प्रमाण ये तीनूं ही भिन्न भिन्न हैं। यहां कहैं ये तीनूं ही भ्रान्ति हैं भ्रम रूप हैं तौ भ्रान्ति स्वरूप होते प्रमाण होना भी भ्रांति ही ठहरै। फेर कहै प्रमाण भी भ्रान्ति ही होहु तौ प्रमाण भ्रान्ति स्वरूप होतैं प्रमाण अप्रमाण स्वरूप बाह्य पदार्थ प्रमेय हैं ते भी भ्रान्ति स्वरूप ठहरैं हैं। ऐसैं होते अंगरंग ज्ञानका अर बाह्य पदार्थका सर्व ही का लोप होय। तब संबेदनाद्वैतवादी की भी सिद्धि नाहीं होय है। इहां ऐसा जानना जो वक्ताकै अर्थका ज्ञान बिना तौ वाक्य कैसे प्रवर्तै बहुरि वक्ताका वाक्य नैं (न) प्रवर्तै तब श्रोता कै अर्थका ज्ञान कैसे होय। बहुरि प्रमाता, यथा अयथा, पदार्थका निर्णय करने वाला ताके पदार्थकी प्रमाणता नैं होय तौ शब्द अर अर्थ जे प्रमेय तिनका यथार्थपणा कैसे होय। तातैं वक्ता श्रोता प्रमाताका ज्ञान वाक्य प्रमाणता न्यारे न्यारे माननैं जो संवेदनाद्वैतवादी न मानैं तौ ताका संवेदना द्वैत भी सिद्ध न होय है॥ ८६ ॥

आगैं संवेदना द्वैतवादी कहै जो भ्रान्ति रहित प्रमाण निर्बाध मानिये है तौ आचार्य कहैं हैं बाह्य पदार्थ भी मानना। बाह्य पदार्थ माने बिना प्रमाण अर प्रमाणा भासकी व्यवस्था नाहीं ठहरै है।

बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं, बाह्यार्थे सति नासति ।
सत्यानृतव्यवस्थैवं, युज्यतेर्थाप्त्यनाप्तिषु ॥ ८७ ॥

अर्थ—बाह्य पदार्थके होतैं तौ बुद्धिके अर शब्दके प्रमाणपणा है । अर बाह्य पदार्थके न होतैं बुद्धिके अर शब्दकै प्रमाणपणा नाहीं है । जातैं अर्थ की प्राप्ति अर अप्राप्ति विषैं ऐसै ही सत्य की अर असत्य की व्यवस्था युक्ति होय है । बाह्य पदार्थ विना बुद्धिकैं अर शब्दक प्रमाणता नैं होय है । इहां ऐसा जानना–जो बुद्धि तौ ज्ञान है सो तौ अपने ही वस्तुके प्राप्तिके अर्थ है बहुरि शब्द है सो परके प्रतिपादनके अर्थ है । वचन बिना परका ज्ञान परके प्रत्यक्ष ग्रहण मैं नाहीं आवै है ॥ बहुरि स्वपक्षका साधना पर का पक्ष का दूषणां ऐसै ही होय है तातैं जो प्रमाणकूं निर्बाध मान अपनी पक्ष साध्या चाहै ताकूं बाह्य पदार्थ भी मानना वा बाह्य पदार्थ बिना प्रमाण प्रमाणाभास न ठहरै है । ऐसै बाह्य पदार्थ सिद्धि होतैं वक्ता श्रोता प्रमाता ये तीनूं सिद्ध होय हैं । बहुरि तिनके ज्ञान बचन प्रमाण ये तिनूं सिद्ध होय हैं ऐसे जीव शब्द कैं संज्ञापणा हेतु तैं बाह्यार्थ सहितपणां सिद्धि होय है । बहुरि याही तैं जीव की सिद्धि होय है याही तैं जीव पदार्थ कूं जाणि अर प्रवर्त्तनेके निर्बाध सवाध की सिद्धि है । ऐसे भाव प्रमेयकी अपेक्षा तौ कथंचित् सर्व ज्ञान अभ्रान्त सिद्ध होय । बहुरि बाह्य प्रमेय की अपेक्षा कथंचित् बाह्य पदार्थ विषैं विसंवाद तैं भ्रांति सिद्धि होय है अविसंवादतै अभ्रान्ति सिद्ध होय है। ऐसै भी कथंचित् उभय, कथंचित्-अवक्तव्य, कथंचित् अभ्रांति वक्तव्य, कथंचित् भ्रान्ति अवक्तव्य, कथंचित् उभया वक्तव्य, ऐसैं पूर्ववत् सप्तभंगी प्रक्रिया जोड़नी । ऐसैं अंतरंग बाह्य तत्वका निर्णय किया कूं ज्ञायक उपाय तत्व कहिये ॥ ८७ ॥

चौपाई

अंतरंग बहिरंग विचार, पक्ष होय एकान्त निवार ।
तत्व जनायौ श्री मुनिराय, अनेकांत है सत्य उपाय ॥ १ ॥

इति श्री आप्त मीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की
संक्षेप अर्थ रूप देश भाषा मय बचानिका
विषैं सातवा परिच्छेद समाप्त भया ।

इहां ताई कारिका सत्यासी भई ॥८७॥
आगैं आठमां परिच्छेदका प्रारम्भ है—

अष्टम परिच्छेद ।

दोहा.

देवरु पौरुष पक्षका, हट विन यथा जनाय ।
अनेकांततैं साधि जिन, नमूं मुननिके पांय ॥ १ ॥

अब यहां कारक लक्षण उपेयतत्त्वकी परीक्षा करैं हैं । तहां प्रथम ही दैव हीतैं कार्य सिद्धि है ऐसा एकान्त पक्ष मानै तामैं दोष दिखावैं हैं ।

दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरुषतः कथं ।
दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ—जो दैव हीतैं एकान्तकरि सर्व प्रयोजन भूत कार्य सिद्धि है ऐसै मानिए तौ तहां पूछिए है । जो पुण्य पाप कर्म्म सो पुरुष के शुभ अशुभ आचरण स्वरूप व्यापार तैं कैसें उपजै है । इहां कहै अन्य दैव जो पूर्वैं था तातैं उपजै है, पौरुषतैं नाहीं ताकूं कहिए । ऐसैं तो मोक्ष होनेका अभाव ठहरै है । पूर्वैं पूर्व दैवतैं उत्तरोत्तर दैव उपजवो करै तब मोक्ष कैसे होय पौरुष करना निष्फल ठहरै । तातैं दैव एकान्त श्रेष्ठ नाहीं । इस ही कथन करि केई ऐसें ऐकान्त करै जो धर्मका अभ्युदयतैं मोक्ष होय है । ताकाभी निषेध जानना । बहुरि यहां कोई कहै जो आप पौरुष रूप न प्रवर्तैं कार्य्यका उद्यम न करै ताकैं तौ सर्व इष्टानिष्ट कार्य्य अदृष्ट जो दैव तिसमात्र तैं होय है । बहुरि जो पौरुष रूप उद्यमकरै है ताकै पौरुषमात्र तैं होय है । तहां उत्तर जो ऐसैं कहनेवाला भी परीक्षावान नाहीं जातैं साथि उद्यम करने वालेनिकैं भी कोई कैं तो कार्य निर्विघ्न सिद्ध होय कोईकैंकार्य्य तो नैं होय अर उलटा अनर्थ

की प्राप्ति होय ऐसैं देखिए है। तातैं ऐसैं है योग्यता अथवा पूर्व कर्म-सो तौ दैव है। सो ये दोऊ तौ अदृष्ट हैं। बहुरि इसभवमें जो पुरुष चेष्टाकरि उद्यम करै सो पौरुष है सो यहु दृष्ट है तिन दोऊनि तैं अर्थ की सिद्धि है। पौरुष वालेकैं तो नाहीं होता देखिये है। अर दैव मात्रतैं माननें विषैं वांछा करना अनर्थक ठहरै है। मोक्षभी होय है सो परम पुण्यका उदय अर चरित्रका विशेष आचरण रूप पौरुषतैं होय है। तातैं दैवका एकान्त श्रेष्ठ नाहीं ॥ ८८ ॥

आगैं पौरुष ही तैं कार्य सिद्धि है, ऐसै एकान्त मानै ताभैं दूषण दिखावैं हैं।

पौरुषादेवसिद्धिश्चेत्पौरुषं दैवतः कथं।
पौरुषाच्चेदमोघं स्यात्सर्वप्राणिषु पौरुषं ॥ ८९ ॥

अर्थ—जो पौरुष ही तैं अर्थकी सिद्धि है, ऐसा एकान्त पक्ष मानै ताकूं पूछिए, जो पौरुष दैव तैं कैसें होय है, तातैं जो कार्यकी सिद्धि है सो दैव की निपजाई है सो पौरुष करावै ह। जातैं ऐसा प्रसिद्ध वचन है, जो जैसी भावितव्यता होणी होय तैसी बुद्धि उपजै है। तहां पौरुष वादी फेर कहै, जो पौरुष ही तैं पौरुष होय है तौ ताकूं कहिए ऐसें तौ पौरुष सर्व प्राणी करै है। तिनका सर्व ही का फल भया चाहिये सो है नहीं। कोई कै सफल होय है कोई कै निफल होय है। इहां कहै जो जाके सम्यक ज्ञानपूर्वक, पौरुष होय है ताकै तौ सफल होय है बहुरि मिथ्या ज्ञान पूर्वक होय ताकै निफल होय है ताकूं कहिए जो सम्पूर्ण सम्यक ज्ञान तौ सर्वज्ञ कैं है। बहुरि छद्मस्थ कै तौ आपके ज्ञान मै आई जे सत्यार्थ सामग्री तिनतैं भी पौरुष तैं कार्य नैं होता देखिए है। तातैं पौरुषका एकांत पक्ष भी श्रेष्ठ नाहीं ॥ ८९ ॥

आगैं दोऊ पक्ष का एकान्त मैं तथा अवक्तव्य एकान्त मैं दूषण दिखावैं हैं ॥

विरोधान्नोभयकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषां,
अवाच्यतैकांतेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ९० ॥

अर्थ—स्याद्वादन्याय के विद्वेषीनिकैं दैव पौरुष दोऊ पक्ष एक स्वरूप संभवै नाहीं। जातें दोऊ पक्ष मैं परस्पर विरोध है । बहुरि दोऊका अवक्तव्य एकान्त पक्षभी नाही बणैं जातैं अवाच्य है। ऐसाभी कहना वक्तव्य पक्ष है सो न वणैं। तातैं स्याद्वादन्याय ही श्रेष्ठ है ॥ ९० ॥

आगैं पूछया जो स्याद्वादन्याय कैसें है ऐसैं पूछैं आचार्य्य कहैं हैं।

अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः ।
बुद्धि पूर्वविपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात् ॥ ९१ ॥

अर्थः—जो पुरुषकी बुद्धिपूर्वक नैं होय तिस अपेक्षा विषैं तौ इष्ट अनिष्ट कार्य्य है सो अपने दैव ही तैं भया कहिये तहां पारुष प्रधान नाहीं दैव का ही प्रधानपणा है। बहुरि जो पुरुष की बुद्धि पूर्वक होय तिस अपेक्षा विषैं पौरुष तैं भया इष्टानिष्ट कार्य्य कहिये । तहां दैव का गौण भाव है पौरुष ही प्रधान है। ऐसै परस्पर अपेक्षा जाननी। ऐसै कथंचित् सर्व दैवकृत है। अबुद्धि पूर्वक पणातैं बहुरि कथंचित् बुद्धिपूर्वकपणातैं सर्व पौरुष कृत ही है । कथंचित् उभय, कथंचित् अवक्तव्य, कथंचित् दैवकृत अवक्तव्य, कथंचित् पौरुष कृत अवक्तब्य कथंचित् उभयकृत अवक्तव्य, ऐसें सप्तभंगी प्रक्रिया पूर्व-वत् जोड़नी ॥ ९१ ॥

चोपाई ।

बुद्धिपूर्वमैं पौरुष मानि दैवकीयमैं बुधि मिलानि
ऐसैं अनेकांत जे गहैं । ते जन कार्यसिद्धि सब लहैं ॥ १ ॥

इतिश्री आप्तभीमांसानाम देवागमस्तोत्रकी संक्षेप
अर्थ रूप देश भाषामय वचनिका विषैं
अठमां परिच्छेद समाप्त भया ।

इहां ताईं कारिका इक्याणवै भईं । आगैं नवमैं परिच्छेदका प्रारम्भ है ।

नवम परिच्छेद।

दोहा।

पुण्य पापके बंध कूं, स्यादवादतैं साधि।
कियौ यथारथ जैनमुनि नमौं नितहि तजि आधि॥ १॥

अब इहां पूर्वपरिच्छेदमें दैव कह्या सो दैव इष्ट आनिष्टकार्य्यका साधन प्राणीनिकैं दोय प्रकार कह्या है। एक पुण्य दूजा पाप तहां साता वेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र, ऐसें च्यार तौ पुण्य कर्म्मकहे हैं। बहुरि इनतैं अन्यकर्म प्रकृति हैं ते पाप कर्म्म कहे हैं तिनका भेद तौ सिद्धान्ततैं जानना। अब इहां कहैं हैं जो इनका आश्रव बंध कैसे होय है। तहां कोऊ ऐसा एकान्त पक्ष मानै जो परकूं दुःख देनेमें तो पाप है अर पर कूं सुखी करनेमें पुण्यं है। ऐसैं एकान्त पक्षमैं दूषण दिखावैं हैं।

पापं ध्रवं परे दुखात् पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतना कषायौ च वध्येयातां निमित्ततः॥ ९२॥

अर्थ—पर विषैं दुःख करनैतैं तौ ध्रुवं कहिये एकांत करि पाप बंध होय है। बहुरि पर विषैं सुख करनैतैं एकान्त करि पुण्य बंध होय है। जो ऐसा एकान्त पक्ष मानिये तौ अचेतन जे तृण कंटकादिक दुःख करनेवाले बहुरि दूध आदि सुख करने वाले अर अकषाय जो कोप रहित वीतराग मुनि आदि ते भी पुण्य पाप करि बंधे जातैं पर विषैं सुख दुःख उपजना निमित्तका सद्भाव पाइए है। इहां कहै जो चेतन ही बंध योग्य है तौ वीतराग मुनि चेतन हैं ते भी बंधैं। फेर

यहां कहै वीतराग मुनिनके सुख दुःख उपजावनेका अभिप्राय नाहीं। तातैं ते न बंधै तौ ऐसैं कहैं पर विषैं सुख दुःख उपजावने मैं बंध होय ही है ऐसा एकान्त नैं रह्या। इस हेतु तैं नाहीं भी बंधै है ऐसा आया ॥ ९२ ॥

आगैं आपके दुःख करने तैं पुण्य बंधैं, आप सुख करनैं तैं पाप बंधै ऐसा एकान्त मैं दूषण दिखावैं हैं।

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात्पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युञ्ज्यान्निमित्ततः ॥ ९३ ॥

अर्थ—आपके दुःख उपजानैं तैं तौ पुण्य बंध होय है अर आपके सुख उपजानैं तैं पाप बंध होय है। ऐसा ध्रुवं कहिये एकान्त करि मानिये तौ कषाय रहित अभिप्राय रहित मुनि तथा विद्वान कहिये ज्ञानी पंडित ये भी पुण्य पाप दोऊनि करि युक्ति होय बंधै जातैं इनकौं निमित्तका सद्भाव है। वीतराग मुनि कैं तौ कायक्लेश आदि दुःखकी उत्पात्ति पाईए है, बहुरि ज्ञानी पंडित कैं तत्त्व ज्ञान संतोष रूप सुख की उत्पत्ति पाइए है यह निमित्त है। बहुरि कहैं तिनकैं सुख दुःख उपजावनेका अभिप्राय नाहीं है तातैं तिनके बंध नाहीं तौ ऐसैं अनेकान्त सिद्धभया इस हेतुतैं बंध नाहीं भी ठहऱ्या। बहुरि अकषाई भी बंधै तौ बंध तैं छूटना नाहीं ठहरै। ऐसैं दोऊ ही एकान्त श्रेष्ठ नाहीं, प्रत्यक्ष अनुमान तैं विरोध है ॥ ९३ ॥

आगैं दोऊका एकान्त मानैं तामैं दूषण दिखावैं हैं॥

श्लोक।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषां।
अवाच्यतैकांतेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ९४ ॥

अर्थ—दोऊ एकान्तकूं एक स्वरूप करि एकान्त मानैं तौ दोऊ एक स्वरूप होय नाहीं, जातैं दोऊ पक्षनिमैं स्याद्वादन्यायके विद्वेषीनकैं विरोध है तातैं कथंचित् मानना युक्त है। बहुरि अवक्तव्य एकान्त पक्ष मानैं तौ अवक्तव्य है। ऐसे कहना भी न बनैं तातैं स्याद्वाद ही युक्त है ॥ ९४ ॥

आगैं पूछै है स्याद्वाद विषैं पुण्य पापका आश्रय कैसे बणै है ऐसे पूछैं आचार्य्य कहैं हैं।

विशुद्धिसंक्लेशाङ्गंचेत्, स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्यपापाश्रवौ युक्तौ नचेद्व्यर्थस्तवार्हतः ॥ ९५ ॥

अर्थ—आप विषैं अर पर विषैं तथा दोऊ विषैं तिष्ठै उपजावै उपजै जो सुख दुःख सो जो विशुद्धि और संक्लेशका अंग होय तौ पुण्य अर पापका आस्रव युक्त होय। बहुरि जो हे भगवन्? विशुद्धि संक्लेशका अंग नैं होय तौ तुम जो अरहंत तिनके मतमें व्यर्थ कह्या है। तिनतैं बंध नाहीं होय है, तहां विशुद्धतौ मंद कषाय रूप परिणामकूं कहिये है। बहुरि संक्लेश तीव्र कषाय रूप परिणामकूं कहिये है। तहां विशुद्धिका कारण विशुद्धिका कार्य्य विशुद्धिका स्वभाव ये तौ विशुद्धिके अंग हैं। बहुरि संक्लेशके कारण संक्लेशके कार्य्य मैं संक्लेशका स्वभाव ये संक्लेशके अंगहैं। बहुरि विशुद्धिके अंगतै तौ पुण्यका आस्रव होय है। बहुरि संक्लेशके अंगतैं पापका आस्रव होयहै। तहां आर्त ध्यान रौद्र ध्यान परिणाम तौ संक्लेश स्वभावहै। वहुरि आर्त्त रौद्र ध्यानका अभाव आत्माका आप विषैं तिष्ठना सो विशुद्धि स्वभावहै बहुरि आर्त्त रौद्र ध्यानके कार्य्य हिंसादिक क्रियाहैं. तेभी संक्लेशका अंग है। बहुरि मिथ्या दर्शन, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग ये आर्त्त रौद्र ध्यानके कारण हैं तेभी संक्लेशके अंग हैं। बहुरि आर्त्त रौद्र ध्यानका अभाव सो

विशुद्धिका कारण है। बहुरि सम्यग्दर्शनादिक विशुद्धिके कार्य्य हैं, बहुरि धर्म्म शुक्ल ध्यानके परिणाम हैं। ते विशुद्धिके स्वभाव हैं तिस विशुद्धिके होते ही आत्मा आप विषैं तिष्टै है। तातैं यह अनेकांत सिद्ध भया। जो स्वपरस्थ सुख दुःख हैं ते कथंचित् पुण्यआस्रवके कारण हैं। जातैं विशुद्धिके अंग हैं बहुरि कथंचित् पापआस्रवके कारण हैं जातैं संक्लेशके अंग हैं। ऐसें ही कथंचित् उभय है, कथंचित अवक्तव्य है, कथंचित् पुण्यहेतु अवक्तव्य है, कथंचित् पापहेतु अवक्तव्य है, कथंचित् उभय अवक्तव्य है, ऐसें सप्तभंगी प्रक्रिया पूर्ववत् जोड़नी ॥९५॥

चौपाई।

निजपर सुख दुःख पुण्य वंधाय, जो बिशुद्धिके अंग जु थाय।
बंधै पाप जो रचै कलेश, परम विशुद्ध बंध नहि लेश ॥१॥

इतिश्री आप्तमीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की संक्षेप
अर्थरूप देश भाषा मय बचनिका विषैं
नवमां परिच्छेद समाप्त भया ॥ ९ ॥

यहाँ तांई कारिका पिच्याणवे भई ॥ ९५ ॥
आगैं दसमा परिच्छेदका प्रारम्भ है।

दशम परिच्छेद ।

दोहा ।

बंध होय अज्ञानतैं, अल्पज्ञानतैं मुक्त ।
दोऊ मिथ्यापक्षविन, नमौं स्यातपदयुक्त ॥ १ ॥

अब यहाँ अज्ञानतैं बंध ही होय है बहुरि अल्पज्ञानतैं ही मोक्ष होय है। ऐसे दोऊ एकांतपक्ष माननेमैं दोष दिखावै हैं

आज्ञानाच्चेद्ध्रुवो बंधो, ज्ञेयानंत्यान्नकेवली ।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा ॥ ९६ ॥

अर्थ—जो अज्ञानतैं बंध होय है। ऐसा एकांत पक्ष मानिये तो केवली न होय जातैं ज्ञेय पदार्थ अनंत हैं। बहुरि स्तोक कहिये थोरे ज्ञानतैं मोक्ष होय है ऐसा ऐकान्तपक्ष मानिये तो रहता अज्ञान बहुत है। तातैं बंध ठहरै तब मोक्ष काहेतैं होय। एस दोउ एकांत पक्षमें दोष आवै है इहाँ ऐसाजाननां जो सर्व पदार्थनको जानें ताकूं सर्वज्ञ केवली कहिये हैं सो जेतै ऐसा न होय ते तै अज्ञान है ऐसे अज्ञानतै बंध ही हो वो करै तब बंधतैं छूटना बिना केवली कैसैं होय बहुरि अल्पज्ञान होतें तौं सर्वज्ञ न होय जे तैं बहुत अज्ञान अब शेष है। तातैं बंध होय यह पक्ष आवै। तातैं दोऊ एकान्त पक्ष श्रेष्ठ नाहीं ॥ ९६ ॥

आगैं दोऊ एकान्त पक्ष मानै तथा अवक्तव्य एकान्त मानैं तामैं दोष हिखावैं है ॥ ९६ ॥

विरोधान्नोभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ९७ ॥

अर्थ—स्याद्वाद न्यायके विद्वेषी हैं तिनकैं दोऊ पक्ष एक स्वरूप होय नाहीं जातैं इनमैं परस्पर विरोध है। बहुरि अवाच्यताका एकान्त पक्ष भी नाहीं वणें जातैं यामें अवाच्य है ऐसा भी कहनां न वणैं जातैं यह भी पक्ष श्रेष्ठ नाहीं ॥ ९७ ॥

आगें पूछैं हैं जो ऐसैं हैं तो प्राणीनिकैं बंध कौण हेतुतैं होय है। जाकरि इष्ट अनिष्ट कार्य्य प्राणीनिकैं होय है। सो अबुद्धि पूर्वक अपेक्षा होतैं होय हैं ऐसैं पूर्वैं काह्या सो कहनां वणैं। बहुरि मुनिकैं मोक्ष काहैतैं होय है। जा करि पौरुषतैं इष्टकी सिद्धि बुद्धिपूर्वक अपेक्षातैं होय है। ऐसे पूर्वैं कह्या सो कहनां वणें। अर नास्तिक मतका परिहार होय। ऐंसे पूछें इस आशंकाके निराकरणके इच्छुक आचार्य कहैं हैं।

अज्ञानान्मोहतो बंधो, नाज्ञानाद्वीतमोहतः।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षः स्यादमोहान्मोहितोऽन्यथा ॥ ९८ ॥[1]

अर्थ—मोह सहित अज्ञान है तातैं बंध है। बहुरि मोह रहित अज्ञान है तातैं बंध नाहीं है। ऐसें कथंचित् अज्ञानतैं बंध है कथंचित नाहीं। ऐसा अनेकान्त सिद्ध होय है। बहुरि स्तोक ज्ञान होय। अर जामें मोह नाहीं होय ऐसे तो मोक्ष होय है। बहुरि जो स्तोक ज्ञान मोह सहित है तातैं बंध होय है ऐंसे स्तोक ज्ञानमैं अनेकान्त सिद्ध होय है। इहाँ ऐसा जानना जो कर्म्म बंध स्थिति अनुभाग लियें अपने फल देनेंकूं समर्थ होय ऐसा कर्म्म बंध है सो क्रोधादि कषायनितैं मिल्या मिथ्यात्व सहित तथा मिथ्यात्व रहित केवल कषाय सहित अज्ञानतातैं होय है बहुरि जामें क्रोधादि कषाय तथा मिथ्यात्व न मिलै ऐसाअज्ञान यथाख्यात चारित्र वाले मुनिनकैं हैं। तिसतैं स्थिति अनुभाग रूप बंध नाहीं होय है। ऐसैं ही स्तोक

१ अष्ट सहस्रीमें इसप्रकार पाठ है 'अज्ञान्मोहिनो बन्धो न ज्ञानाद् वीतमोहतः। ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोन्यथा,।

ज्ञानमें जानना। केवल ज्ञान अपेक्षा स्तोक ज्ञान छद्मस्थका कहिये तामें मोह सहिततैं वंध होय मोह रहित तैं मोक्ष होय ऐसैं जानना। यहाँ भी सप्त भंगी प्रक्रिया पूर्ववत जोड़णी अज्ञानतैं कथाचिंत वंध है, बहुरि कथंचित मोह रहित अज्ञानतैं बंध नाहीं हैं, बहुरि मोहरहित स्तोक ज्ञानतैं मोक्ष है मोह सहित स्तोक ज्ञानतें वंध है, कथंचित् उभय है कथंचित् अवक्तव्य है कथंचित् अज्ञानतैं बंध अवक्तव्य हैं कथंचित् अज्ञानतैं बंध नाहीं अवक्तव्य है, कथंचित् उभय अवक्तव्य है। ऐसें इहाँ ताई सर्वथा एकान्त बादी अर आप्तके अभिमानतैं दग्ध तिनके मत इष्ट तत्वमें बाधा दिखाई। अर अनेकान्त निर्वाध दिखाया ताकी दश पक्ष वर्णन करी। सत् असत्, एक अनेक, नित्य अनित्य, भेद अभेद, अपेक्षा अनपेक्षा, हेतु आगम, अंतरंग बहिरंगत्व, दैबसिद्धि पौरषसिद्ध, पुन्यपापकाबंध, अज्ञानतैबंध स्तोक ज्ञानतैं मोक्ष, ऐसैं दश पक्षका विधि निषेधतैं साधि सात सात भंग करि सत्तरि भंगका एकांत निषेध्या स्याद्वाद साध्या ॥ ९८ ॥

कारिका अठाणवै भई।

आगै पूछै हैं जो काम आदि दोष स्वरूप जे मोहकी प्रकृति तिन करि सह चरित जो अज्ञान तातैं प्राणीन कै शुभ अशुभ फलका भोगनेका कारण जो पुन्य पाप कर्म तिनतैं बंध कह्या सो तो हो हू परंतु सो यह कामादिकका उपजनाँ है सो ईश्वर है निमित्त जाकूं ऐसा है ऐसैं पूछैं इस आशंका कूं दूर करनेकूँ आचार्य कहैं हैं।

कामादिप्रभवश्चित्रः, कर्मबन्धानुरूपतः।
तच्चकर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः ॥ ९९ ॥

अर्थ—कामादिप्रभवःकहिये काम क्रोध मान माया लोभ आदिका प्रभव कहिये उत्पत्ति जामें होय हैं। ऐसा भाव संसार है। सो चित्र

कहिये अनेक प्रकार है जातैं याभैं सुख दुख आदिक देशकालके भेद करि कार्य अनेक प्रकार होय हैं सो यह (कामादिप्रभव) विचित्ररूप संसार है। सो कर्म बंधकै अनुरूप होय है। जैसा कर्म पूर्वें वांध्या था ताकै उदयके अनुसार होय है। बहुरि सो कर्म पूर्वें वांध्या था सो अपने कारणनितैं वांध्या था बहुरि ते कारण जीव है। बहुरि ते जीव शुद्धि अशुद्धि के भेद तैं दोय प्रकार है। ऐसैं संसारकी उत्पत्तिका क्रम है। यहां ईश्वरवादी कहै जो कामादिकका प्रभवहै। सो ईश्वरके किये होय हैं। ताकूं कहिये जो ईश्वर तो नित्य है एक स्वाभावरूप है। बहुरि ताकी इच्छा भी एक स्वभाव है। बहुरि ताका ज्ञान भी एक स्वभाव है। अर ये संसारमें कार्य्य हैं ते अनेक स्वभाव रूप हैं। सो एक स्वभाव होय सो अनेक स्वभाव रूप कार्य्य निकूं कैसैं करै जो करै तो कार्यनिकी जों ईश्वर कै तथा इच्छा कै स्वभाव कैं तथा ज्ञान कैं अनित्य पणां अर अनेक स्वभाव पणां आवै सो ऐसा ईश्वर मान्यां नाहीं तथा सिद्ध होय नाहीं बहुरि जीवन कै शुद्ध अशुद्ध भेद करने तैं केईके मुक्ति होय है कोईके संसार ही है। ऐसा सिद्ध होय है बहुरि ईश्वर वादकी चरचा विशेष है सो अष्ट सहश्री तैं जाननी ॥९९॥

आगैं पूछै हैं जो जीवनके शुद्धि अशुद्धि कही तिनका स्वरूप कहा है ऐसैं पूछें। आचार्य कहै हैं।

शुद्ध्यशुद्धी पुनः शक्ती ते पाक्यापाक्यशक्तिवत्।
साद्यनादी तयोर्व्यक्ती स्वभावोऽतर्कगोचरः ॥ १०० ॥

अर्थ—पुनः कहिये बहुरि ते पूर्वोक्त शुद्धि अशुद्धि दोऊ हैं ते शक्ति हैं। योग्यता अयाग्यता है ते सुनिश्चितअसंभव-द्बाधक प्रमाणतैं निश्चित करी हुई संभवै है जैसे मांष—उड़द मूंग धान्य है तिनमें पाक्यापाक्य कहिए पचनें पचावनें योग्य अर न पचने

पचावने योग्य शक्ति है सो स्वयमेव है तैसैं है। बहुरि तिन दोऊनिकी व्यक्ति है प्रगट होना है सो साधि कहिए काल अपेक्षा आदिसहित है तथा अनादि कहिये आदि रहित है। बहुरि यहाँ पूछें जो सादि अनादिकाहेतें है तहाँ ऐसा उत्तर जो यह वस्तुका स्वभाव है सो यह तर्कके गोचरनाहीं। वक्त स्वभावमें हेतुका पूछना नाहीं ऐंसे कारकाका अर्थ है। यहँाटाकामें ऐसा अर्थ है। जोजीवनकैं भव्यपणा हैं सो तो शुद्धि शाक्ति है। सो तो सम्यग्ददर्शन आदि की प्राप्तितैं निश्चयकीजिये हैं। बहुरि अशुद्धिशक्ति अभव्यपणा है। सो सम्यदर्शनादिककी प्राप्ति रहित है सो यह प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञ जानै हैं। अर छमस्थ आगमतैं जानै हैं बहुरि तिनकी व्यक्ति होय है। सो भव्य जीवकै तो शुद्धिकी व्यक्ति सादि है। जातैं याके सम्यग्दर्शन आदिक आदिसहित प्रगट होय हैं। बहुरि अभव्यजीवकैं अशुद्धि की व्यक्ति आनादि ही है।

जातैं याकैं भिव्यादर्शन आदिक अनादहीके हैं। बहुरि इस शक्तिकी व्यक्तिका ऐसा भी व्याख्यान है। जो जीवनकै अभीप्रायके भेदतैं शुद्धिअशुद्धि है। तहाँ सम्यग्दर्शनादि परिणाम स्वरूप अभिप्राय तो शुद्रि है। अर मिथ्यादर्शन परिणाम स्वरूप अभिप्राय अशुद्धि है। इनकी व्याक्ति भव्यजीवनहीके सादि अनादि है। तहाँ सम्यग्दर्शनादिक न उपजै तेतैं अशुद्धिकी व्यक्ति अनादि कहिए बहुरि सम्यग्दर्शनादि स्वरूप शुद्धिकी व्यक्ति सादि कहिये ऐसे जानना। बहुरि कोई पूछे जौ हहां स्वभावमें तर्क न करना कह्या। सो प्रत्यक्ष प्रीतिमें आया पदार्थका स्वभावमें तर्क न कह्या है। अर जो परोक्ष होय तामें तो तर्क किया चाहिये ताका उत्तर ऐसा जो अनुमान कर प्रतीतिमें आया अर्थमें भी तर्क न करनां। अरु सिद्ध प्रमाण आगम गोचर जो जीनका स्वभाव है। तामें भी तर्क न करना तातैं यह कहना भले प्रकार वण्या

जो द्रव्यादि संसार है कारण जाकूँ ऐसा कामादि प्रभव रूप भाव संसारकै कर्म बंधकै अनुरूप पणां हो तैं जीविनकैं शुद्धि अशुद्धिका विचित्र पणांतैं युक्ति होना न होना है ॥ १०० ॥

आगै मानूं भगवान पूछा जो हे समंतभद्र। सर्वज्ञ पणां आदिक उपेय तत्व बहुरि ताके उपाय तत्व जो ज्ञायक कहिये जनावनेवाला हेतुवाद अहेतुवाद अर कारकतत्व दैव पौरुष इनका अधिगमन कहिये जानना समस्त पणें तो प्रमाण करि अर एक देशपणे नयन करि करणां कह्या है। जातैं प्रमाण नयविना अन्य प्रकार इनका जानना न होय है यह नियम कह्या है। तातैं प्रथमही प्रमाणकूं कहै ना जातैं याके स्वरूप संख्या विषय फल इन चारनिके विषैं विप्रातिपत्ती है।—अन्यवादी अनेक प्रकार इनकूं कहै अन्यथा माने है। तिनका निराकरण विना प्रमाणका निश्चय न होय। ऐसैं पूछैं मानूं आचार्य्य कहें हैं।

तत्वज्ञानं प्रमाणं ते, युगपत्सर्वभासनम्।
क्रमभावि च यज्ज्ञानं, स्याद्वादनयसंस्कृतम्॥ १०१ ॥

अर्थ—हे भगवन् ते कहिये तुमारे मतमें तत्व ज्ञान है सो प्रमाण है। यह तौ प्रमाणका स्वरूप कहा। कैसा है तुम्हारा तत्वज्ञान युगपत् सर्वभासनं कहिये एकैं काल सर्वपदार्थनिका है प्रतिभासन जामैं ऐसा केवलज्ञान है बहुरि जो ज्ञान क्रम भावी है सो भी प्रमाण है जातैं यहभी तत्व ज्ञान है। ऐसा मति श्रुति अवधि मनःपर्यय ये चार ज्ञान है। बहुरि केसा हेतु होय तातें स्याद्वाद नय करि संस्कृत है। जो सर्वथा एकांत कहिए तौ वाधा सहित होय। तातैं स्याद्वादतैं सिद्धकिया निर्वाध है। ऐसे युगपत सर्वभासन अर क्रमभावी कहनेमें प्रत्यक्ष परोक्ष रूप संख्या कही। बहुरि सर्वभासन अर क्रमरूप भासन ऐसें कहनेंतैं विषय जनाया। ऐसें कारिका का अर्थ प्रमाण

का स्वरूप संख्या विषय जनावनें स्वरूप है तहाँ ऐसा जानना जो तत्त्व ज्ञान कहनेंतैं अज्ञानकैं तथा निराकार दर्शनकैं तथा इन्दिय और विषय कै भिडने रूप सन्निकर्षकें तथा इन्द्रियकी प्रवृत्ति मात्र कैं प्रमाण पणौंका निराकरण भया। यह प्रमिति प्रति करण नाहीं तातैं प्रमाण नाहीं। यहाँ कोई पूछै तत्व ज्ञानकूं सर्वथा प्रमाणता कहतें अनेकांतमें विरोध आवै हैं ताकों कहिये यह बुद्धि है सो अनेकान्त स्वरूप है। जिस आकारतैं तत्वज्ञानरूप है तिस आकारतैं प्रमाण है। अर जिस आकारतैं मिथ्याज्ञान स्वरूप है तिस आकरतैं अप्रमाण है। ऐसें बुद्धि प्रमाण अप्रमाण स्वरूप होतैं अनेकान्तमें विरोध नाहीं है। जैसे निर्दोष नैत्रवाला चन्द्रमा सूर्यको उगतै कूं देखैं। तबपृथ्वी सूं लग्या हुवा दीखै सो चन्द्र सूय पणाकी अपेक्षातो यह देखना प्रयाण है बहुरि पृथ्वीसो लगा देखना अप्रमाण है। बहुरि तैसें ही दोष सहित नेत्रवालाकूं एक चन्द्रयाका दोय चन्द्रमादीखै सो चन्द्रमा देखनातो प्रमाण है। अर दोय चन्द्रमा देखना अद्यप्रमाण है ऐसैं एकही बुद्धिमें अपेक्षा विवक्षातैं प्रमाण अप्रमाणपणा संभव है। बहुरि इहाँ कोई पूछे प्रमाण अप्रमाणका नामका नियमका व्यवहार कैसें ठहरै ताकूं कहिये बधते घटतेकी अपेक्षा प्रधान गौण कर नामका व्यवहार चलै है। जैसैं किस्तूरी आदिकमें सुगंध बहुत देखि ताकूं व्यवहारमें सुगंध द्रव्य कहिये ऐसे गंधकी प्रधानता करि कह्या। यद्यपि वामें स्पर्श आदि भी हैं—तथापि तिनकी गौणता है। ऐसे नामका व्यवहार है। ऐसे तत्वज्ञान प्रमाणका स्वरूप कह्या। बहुरि संख्या प्रत्यक्ष परोक्षके भेद करि दोइ कहीं तहाँ प्रत्यक्षके भेद दोय। तहाँ व्यवहार प्रत्यक्षतो इन्द्रिय बुद्धिइन्द्रिय करि विषयको साक्षात् जानना बहुरि परमार्थ प्रत्यक्ष सकल प्रत्यक्ष तो केवलज्ञान अर विकल प्रत्यक्ष अवधि मनःपर्ययज्ञान ऐसैं

प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । याका लक्षण समान्य स्पष्ट विशेषनि सहित वस्तुका जाननां है। बहुरि परोक्षका लक्षण सामान्य अस्पष्ट व्यवधान-सहित जानना ताके भेद पांच। स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान आगम ऐसैं। इनका लक्षण ऐसा जो पूर्वैं अनुभवमें धारणमें आया।—वस्तुका स्मरण होना याद आवना सो स्मृति है। बहुरि वर्तमानमें अनुभवमें आया। अर पूर्वलेका यादि आवनां दोऊनितैं एकपणा अर सदृशपणां आदिकका जोड़रूप ज्ञान होना सो प्रत्यभिज्ञान है। बहुरि साध्य साधनकैं व्याप्ति जो अविनाभाव ताकूँ जानैं सो तर्क है। बहुरि साधनतैं साध्य पदार्थका ज्ञान होना सो अनुमान है ताके भेद दोय हैं स्वार्थनुमान परार्थानुमान ऐसैं तहाँ साधनतैं साध्यका आपही निश्चय करि जानैं सो स्वार्थनुमान है। बहुरि परके उपदेशतैं निश्चयकरि जानैं सो परार्थानुमान है। ताके पांच अवयव हैं। प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय निगमन तहाँ साध्य अर साध्यका आश्रय दोऊनिकूँ पक्ष कहिये। ऐसे पक्षके वचनिकूँ प्रतिज्ञा कहिये तहाँ साध्यका स्वरूपतो शक्य अभिप्रेत अप्रसिद्ध ऐसे तीनस्वरूप है। अर साध्यका आश्रय प्रत्यक्षादिक करि प्रसिद्ध होय है। बहुरि साध्य तैं अविनाभाव व्याप्ति जाकैं होय ऐसा साधनका स्वरूप है। ताका वचन कूँ हेतु कहिये। वहुरि पक्ष सारखा तथा विलक्षण अन्यठिकाणा होय ताकूँ दृष्टांत कहिए हैं। ताका बचन कूं उदाहरण कहिए है। सो पक्ष सारखाकूँ अन्वयी कहिए। विपरीत कूँ व्यतिरेक कहिए। बहुरि दृष्टान्तकी अपेक्षा ले अर पक्षकू सामान करि कहे सो उपनय है। बहुरि हेतु पूर्वक पक्षका नियम करि कहना निगमन है। इनका उदाहरण ऐसा यह पर्वत अग्निमान है। यहतों प्रतिज्ञा बहुरि जात यह धूमवान है यह हेतु बहुरि जो धूमवान है सो अग्निवान है जैसे रसोई घर यह अन्वय दृष्टांन्त। बहुरि जो धूमवान नाहीं तो अग्निबान नाहीं।

जैसे जलका निवाश यह व्यतिरेक दृष्टांन्त यह उदाहरण । बहुरि जैसे यह धूमवान पर्वत है यह उपनय । बहुरि तातैं यह अग्निमान है यंह निगमन ऐसे पांच प्रयोगका परार्था नुमान हैं । बहुरि आप्त जो सर्वज्ञ आदि जो सांचा वक्ता ताकै वचनतैं वस्तु निश्चयकीजिये सो आगम प्रमाण है । ऐसें प्रमाणकी संख्या है । अन्यवादी स्मृति प्रत्यभि ज्ञान तर्ककूं प्रमाण नैं मानि सँख्याका नियम थापै हैं । तिनका नियम स्मृति आदि प्रमाण विगाड़ै हैं । बहुरि प्रमाणका विषय सामान्य विशेष स्वरूप वस्तु है । सोही निर्बाध सिद्ध होय है । अन्यवादी सामान्यहीकूँ तया विशेष ही कूँ तथा दोऊँ कूँ परस्पर अपेक्षा रहित प्रमाणका विषय थापैं हैं सो निर्बाध सिद्धि होय नाहीं है । बहुरि तत्वज्ञान स्याद्वादनय करि सँस्कृत है तहाँ ऐसे जाननां जो तत्वज्ञान है सो कथंचित् युगपत प्रतिभास स्वरूप है । जातैं सकल विषय स्वरूप है । अर कथंचित् क्रम भावी है । जातैं जाका क्रमरूप विषय है । इत्यादि सप्त भंग जोड़ना अथवा न्यारे न्यारे भेदनि प्रति लगावणां । जैसैं तत्वज्ञान है सो कथंचित् प्रमाण है । अपनी प्रमिति प्रति साधकतम करण है । बहुरि कथंचित् अप्रमाण है जातैं अन्य प्रमाणके भेद अपेक्षा प्रमेय है । अथवा आपके आप प्रमेय है । इत्यादि सप्तभंगी जोड़नी बहुरि प्रमाण की विशेष चरचा अष्ट सहभी टीका तैं तथा श्लोकवार्तिक तत्वार्थ सूत्रकी टीका तैं तथा परीक्षामुख ग्रन्थ तैं जाननी ॥ १०१ ॥

आगैं प्रमाणका फलका स्वरूप कहै हैं । जातैं अन्यवादी फलका-स्वरूप अन्यप्रकार मानैं है ताका निराकरण होय ।

उपेक्षाफलमाद्यस्य, शेषस्यादानहानधीः ।
पूर्वं[1] वा ज्ञान नाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥ १०२ ॥

---

१ सनातन जैन-ग्रन्थ-मालाकी मुद्रित आप्तमीमांसामें 'पूर्वा' पाठ मुख्य है ।

अर्थ—आद्यस्य कहिए कारिकामें युगपत्सर्वभासनँ ऐसा पहले कह्या है। सो केवलज्ञान आद्य लेनां तिसका भिन्न फल तौ उपेक्षा कहिए उदासीनता वीतरागता है। जातैं केवलीनिकैं सर्व प्रयोजन सिद्ध भया संसार अर संसारका कारण हये था ताका अभाव भया अर मोक्षका कारण उपादेय था ताकी प्राप्ति भई। अब किछू प्रयोजन न रहा—तातैं वीतरागता है। इहाँ कोई पूछें केवली वीतराग कै प्राणीनिकै हितोपदेश रूप वचन करुणां विना कैसे प्रवर्त्तै है। ताकूँ कहिए तिनके घाति कर्म्मका नाश भया तातैं मोहका विशेष जो करुणा सो तो नाहीं है। अर अंतरायके नाशतैं सर्व प्रारणीनिकूँ अभयदान देनें स्वरूप आत्माका स्वभाव है सो प्रगट भया है सो ही परमदया है। सो ही मोहके अमावतैं उपेक्षा है। बहुरि उपदेशका वचन है सो तीर्थंकरपणानामा नाम कर्म की प्रक्रातिके उदयतैं विना इच्छा स्वयमेव प्रवर्तै है। तिनतैं सर्व प्राणीनिकैं हितहोय है। बहुरि केवल ज्ञान प्रमाणका अभिन्न फल अज्ञानका अभाव है। बहुरि शेष कहिए मति आदि ज्ञानरूपप्रमाण ताका फल साक्षाततो अपनेविषय विषैं अज्ञानका अभाव है। सो तिनतैं अभिन्न है बहुरि परंपरा करि हेयका त्याग उपादेयका ग्रहणका ज्ञान होना फल है तथा पूर्वा कहिये उपेक्षा भी है ते तिनतैं भिन्न हैं ऐसे कथंचित् फल अभिन्न कथंचित् भिन्न है। यातैं एकान्तका निराकरण है॥ १०२॥

आगैं पूछै हैं जो प्रमाणका फल स्याद्वादनय संस्कृत कहा सो स्यात्शद्वकास्वरूप कहा है। ऐसै पूछें आचार्य कहैं हैं।

वाक्येष्वनेकांतद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्[1]।
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात् तवकेवलिनामपि॥ १०३॥

१ 'विशेषकः, यह पाठ सनातन जैन-ग्रंथ मालाकी वसुनंदि सैद्धान्तिक मुद्रित आप्तमीमावृत्तिमें मुख्य है लिखित भाषा आप्तमीमांसामें तथा मुद्रित अष्टसहस्रीमें 'विशेषणं' यही पाठ मुख्य है।

हे भगवन् ? स्यात् ऐसा शद्ब है। सो निपात है । अव्यय है। बाक्यनिविषैं अनेकान्तका द्योति कहिए प्रकाशने वाला है । बहुरि गम्यं कहिए साधने योग्य जानने योग्य पदार्थ है ताप्रति विशेषण है। जातैं याकैं अर्थका योगीपणां है अर्थतैं संबंध है । यातैं तुमारे मतमें केवलीनिके भी यह है तहाँ कोई पूछैं बाक्य कहा ताका समाधान जे वर्णस्वरूप पद हैं। तिनकैं परस्पर अपेक्षारूपनिकैं निरपेक्ष समुदाय होय सो वाक्य है । अन्य-वादी तो वाक्यका स्वरूप अनेकप्रकार अन्यथा कहैं हैं। सो निर्बाध नाहीं ते दसप्रकार वाक्यतो यह कहैं हैं । तिनके [1]नाम आख्या-शब्द १ संघात २ तामें वर्तैं ऐसीजाति ३ एक अवयव रहित शद्ब ४ क्रम ५ बुद्धि ६ अनुसंहृति ७ आद्यपद ८ अंतपद ९ सापेक्षपद १० ऐसें इत्यादि अनेकप्रकार कहै है। तिनमें बाधाआवै है। स्याद्वादकरि सिद्ध वाक्यका स्वरूप कह्या सोही निर्बाध है। बहुरि पूछै, अनेकान्त कहा ? ताका समाधान—सत् असत् नित्य अनित्य एक अनेक इत्यादि सर्वथा एकांतका निराकरण अनेकांत है। सो इन सत् आदिके लगाया स्यात् शद्ब है सो तिसका विशेषण पणां करि तिसकूं तत्वका अवयव पणां करि ताका द्योतक होय है। जातैं निपात शब्दनिकूं द्योतक भी कहिऐ हैं। बहुरि यह स्यात् निपात स्याद्वादका वाचक भी है । बहुरि (वाक्य) द्योतक पक्षविषैं भी गम्य कहिए जानने योन्य अर्थ प्रति विशेषण होय है। बहुरि स्यात् शब्द सर्वही वाक्यनि प्रति लगावणां जातैं सर्व अर्थकूँ एकही शब्द कहै नांहीं वाक्य क्रमसौं

---

१ आख्यातशब्दः संघातो, जातिः संघातवर्तिनी एकोनवयवः शद्बः क्रमो बुद्धयनुसंहती ॥ १ ॥ पदमाद्यं पदं चान्त्यं पदं सापेक्षमित्यपि। वाक्यं प्रति मति-भिन्ना बहुधा न्यायवेदिनाम् ॥ २ ॥

प्रवर्तै है। तातैं जिस वाक्य कैं जो गम्य अर्थ होय ताहीका द्योतक होय है। जो स्यात् शब्द न लगाइये तो अनेकान्त अर्थ जान्या जाय नांहीं ऐसैं जानना ॥ १०३ ॥

आगैं पूछैं हैं जो कथंचित् आदि शब्दतैं भी तौ अनेकान्त अर्थका जानना होय है। आचार्य कहै हैं—यह सत्य है। होय है यह कथंचित् शब्द भी तिस स्यात् शब्दका पर्य्याय शब्द है। सोही स्याद्वाद दिखावैं हैं।

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः ।
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥ १०४ ॥

अर्थ—स्याद्वाद कहिए स्यात् शब्द है सो सर्वथा एकान्तका त्यागतैं कथंचित्। ऐसा याका पर्य्याय शब्द है। जातैं किं शब्दका कथं निपजाय चित् प्रत्ययका विधान किया है तब कथंचित् ऐसा भया है। बहुरि कैसा है। सप्तभंगरूपनयनकी है अपेक्षा जाकैं। बहुरि कैसाहै हेय अर उपादेय जो अर्थ ताका विशेषकहै भेद करनेवाला है। इहाँ ऐसा जननां जो यह स्याद्वाद है। सो अनेकान्त वस्तु कूँ अभिप्रायरूप अपणां विषयकरि सप्तभंग नयकी अपेक्षाले अर स्वभाव अर परभावकरि सत् असत आदि की व्यवस्था कूँ प्रतिपादनकरै है। तहाँ सप्तभंग नयतो पूर्वैं कहे ते जानूं।—बहुरि नय हैं ते द्रव्यार्थिक पर्य्यायार्थिक इन दोयके भेद नैगम आदिक हैं तहाँ नैगम संग्रह व्यवहार ये तीनतौ द्रव्यार्थिकके भेद हैं ऋजुसूत्र शब्द समाभिरूढ एवंभूत ये चारि पर्यायार्थिकके भेद हैं बहुरि इन सातनिमें नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र ये च्यार तो अर्थ प्रधान है। बहुरि शब्द समाभिरूढ एवंभूत ये तीन शब्द प्रधान हैं। बहुरि नैगम नयके तीन भेद हैं। दोय द्रव्य कूँ प्रधान गोण करि प्रवर्तै

दोय पर्याय कूं प्रधान गौण कारि प्रवर्तै। द्रव्य अर पर्यायकूं प्रधान गौण कारि प्रवर्तै ऐसैं तीन। तहां दोय शुद्ध द्रव्यकूं प्रधान गौण कारि प्रवर्तै। तथा एक शुद्ध एक अशुद्धि ऐसैं दोयद्रव्य कूँ प्रधान गोण कारि प्रवर्तै। ऐसे द्रव्य नैगम दोय प्रकार बहुरि पर्य्याय नैगम तीन प्रकार दोय अर्थ पर्य्यया दोय व्यंजन पर्य्याय एक अर्थ पर्याय एक व्यंजन पर्याय इनकूँ प्रधान गौण कारि प्रवर्तै तहाँ प्रधान अर्थ पर्य्याय तीन प्रकार ज्ञानार्थ पर्य्याय ज्ञेयार्थ पर्य्याय ज्ञानज्ञेयार्थ पर्य्याय ऐसें व्यजंन पर्य्याय नैगम छह प्रकार शब्द व्यंजन पर्य्याय, समभिरूढ व्यंजंन पर्य्याय, एवंभूत व्यंजन पर्याय, शद्ध समभिरूढ व्यंजन पर्याय, शद्ध एवंभूत व्यंजन पर्याय, समभिरूढ एवंभूत व्यंजन पर्याय, ऐसैं बहुरि अर्थ व्यंजन पर्य्याय नैगम तीन प्रकार है। ऋजुसूत्रशब्द, ऋजुसूत्रसमाभिरूढ, ऋजुसूत्रएवंभूत। ऐसैं बहुरि द्रव्यपर्य्यायनैगम आठ प्रकार है। शुद्धद्रव्यऋजुसूत्रार्थपर्याय शुद्धद्रव्यशद्ध, शुद्धद्रव्यसमाभिरूढ, शुद्धद्रव्यएवंभूत। अशुद्धद्रव्यऋजु सूत्र, अशुद्धद्रव्यसमभिरूढ, अशुद्धद्रव्यशब्द, अशुद्धद्रव्यएवंभूत ऐसें बहुरि शब्दनयके काल कारक लिंग संख्या साधन उपग्रहके भेदतैं भेद हैं ते मुख्य गौण करि प्रवर्त्तैं इत्यादि नय, जे ते वचनके भेद हैं ते ते ही नय हैं॥ तिनके मुख्य गौण करि विधिनिशेधतैं सात सात भंग करि प्रवर्तैं हैं। सो ऐसें नयनिकी अपेक्षा ले स्याद्वाद प्रवर्त्तैं है। सो हेय उपादेय तत्व कूं जनावै है॥ १०४॥

आगैं कहैं हैं। जो ऐसा यह स्याद्वाद है। सो केवल ज्ञानकी ज्यों सर्व तत्त्व प्रकाशक है। सो ही दिखावैं हैं।

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्वप्रकाशने।
भेदःसाक्षादसाक्षाच्च, ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्॥ १०५॥

अर्थ—स्याद्वाद और केवलज्ञान ये दोउ हैं ते कैसे हैं सर्व तत्त्वका प्रकाशन जिनतैं ऐसें हैं। बहुरि इनमें साक्षात् कहिए प्रत्यक्ष अर असाक्षात् कहिए परोक्ष ऐसैं जाननेहीका भेद है बहुरि इनमें एकही कहिये अर एक न कहिये ऐसैं अन्यतम होय तौ अवस्तु होय। इहाँ ऐसा जाननां जो ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष ऐसें दोय हि प्रकार हैं। इन सिवाय अन्य कोई है नाहीं बहुरि दोउ ही प्रधान हैं। जातैं परस्पर हेतुपणा इनकैं है केवल जानतैं स्याद्वाद प्रवर्तै है। बहुरि केवल ज्ञान अनादि संतानरूप है तौउ स्याद्वाद तैं जान्याजाय है। बहुरि सर्वतत्त्वके प्रकाशक समान कह्या ताका यहू अभिप्राय है जो जीवादि सात पदार्थ तत्व कहे तिनका कहनां दोउकैं समान हैं जैसैं आगम है सो जीवादिक समस्त तत्व कूँ पर कूँ प्रतिपादन करै है। तैसे ही केवली भी भाषै है। ऐसैं समान हैं। प्रत्यक्ष परोक्ष प्रकाशनेंका ही भेद है। वचनद्वारैं कहनेकी अपेक्षा भी समान हैं। जातैं जिन विशेषनि कूं केवली जानैं है तिनमें जे वचन अगोचर हैं। ते कहनेमें आवैं ही नाहीं बहुरि **स्याद्वादनयसंस्कृतं तत्वज्ञानं** याका व्याख्यान ऐसा जो प्रमाण नयकरि संस्कृत है तहाँ स्याद्वादतौ सप्तभंगी वचनकी विधितैं प्रमाण है। बहुरि नैगम आदि बहुत भेदरूप नय है ऐसे संक्षेपतैं कह्या विस्तारतैं अन्य ग्रन्थनितैं जानना ॥ १०५ ॥

आगैं अब **तत्वज्ञानप्रमाणस्याद्वादनयसंस्कृत** इनका और प्रकार व्याख्यान करैं हैं। तहाँ स्याद्वादतौ अहेतुवाद आगम है बहुरि नये है सो हेतुवाद है। तिन दोउनकरि संस्कृत है सो ही युक्तिशास्त्र इन दोउन करि अविरुद्ध है। सुनिश्चितासंभवद्बाधक रूप है। ऐसैं अभिप्रायवान आचार्य्य है ते—स्याद्वाद अहेतुवाद है। सो तौ पहले कह ही आये हैं अवहेतुवाद जो नय ताका लक्षण कहैं।

सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः ।
स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यंजको नयः ॥ १०६ ॥

अर्थ—जा करि साध्य पदार्थ जानिये सो नय है। सो कैसा है स्याद्वाद जो श्रुतप्रमाण तातैं भेदरूपकिया जो अर्थका विशेष शक्य अभिप्रेत असिद्ध विशेषण विशिष्ट साध्य विवादमें आया ताका व्यंजक है। सो कैसैं व्यंजक है साध्य कै समान धर्मरूप जो दृष्टान्त ताही करि साधर्म्य कहिए समान धर्मपणातैं व्यंजक है सो अविरोधतैं व्यंजक है साध्यतैं विरुद्ध पक्षके साधर्म्यतैं व्यंजक नाहीं है विपक्षतैं तो वे धर्म तेंही अविरोध करिही हेतुकै साध्यका प्रकाशन पणां हैं ऐसैं करने तैं ही हेतुका लक्षण अन्यथानुपपन्नपणां होय है। (अन्यप्रकार हेतुका लक्षण कहैं तामें वाधा है) ऐसैं नय है सो ही हेतु है । बहुरि ऐसे नय सामान्य काभी लक्षण होय है। जातैं स्याद्वाद तैं भेद रूपाकिया जो अर्थ सो प्रधानपणातैं सर्व अंगका व्यापने वाला है । ताका विशेष—जो नित्य पणां आदिक ताका न्यारा न्याराका कहने वाला है सो यह नय है ऐसें नयका समान लक्षण जानना हेतुतौ जो साध्य अभिप्रेतमैं आवै ताही कूँ साधै है। बहुरि नय सामान्य है सो सर्व धर्मनिमें व्यापक है ऐसे अनेक धर्मनि सहित वस्तुकी प्रत्तिपत्ती प्राप्ति ज्ञान सो तो प्रमाण है बहुरि एक धर्मकी प्रत्तीपत्ती धर्मतैं सापेक्ष प्रतिपत्ति है सो नय है । बहुरि प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा निराकरण सो दुर्नय है ॥ १०३ ॥

आगैं जो प्रमाणका विषय अनेकान्तात्मक वस्तु कह्या सो कैसा है ऐसे पूछैं आचार्य्य कहैं हैं ।

नयोपनयैकान्तानां, त्रिकालानां समुच्चयः ।
अविश्वग्[1] भाव संबंधो द्रव्यमेकमनेकधा ॥ १०७ ॥

१ 'अविभ्राड्' ऐसाभी पाठ है ।

अर्थ—तीन काल सम्बधी जे नय अर उपनय तिनका एकांत तिनका अविश्वग्भाव स्वरूप जो सम्बध ऐसा समुच्चकहिए समुदाय एकता सो द्रव्य है। सो कैसा है अनेकधा कहिए अनेक प्रकार है। तहाँ नयका स्वरूप तौ पहले कह्या सो है ते द्रव्य पर्य्यायके भेदतैं तथा तिनके उत्तर भदतैं अनेक है। बहुरि तिन नयन की शाखा प्रति शाखा अनेक हैं। ते उपयन हैं। बहुरि एक एक धर्मका ग्रहण करना सो तिनका एकान्त है। तिनका समुच्चय ऐसा जो धर्म अपना आश्रय रूप धर्म्मींकूं छोड़ि अन्य धर्म्मी में जाना ऐसा अशक्य विवेचनपणां रूप समुदाय सो इहाँ भेदाभेद कथंचित् जानना। सर्वथा भेदाभेद में विरोध है। ऐसैं त्रिकालवर्ती नय उपनयका विषयभूत पर्य्यायविशेषनिका समूह द्रव्य है सो एकानेकस्वरूप वस्तु है। ऐसा सम्यक् प्रकार कह्या हुआ वर्णे हैं॥ १०७॥

आगैं परवादीकी आशंका विचारि अर दूर करते संते आचार्य्यकहैं हैं।

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नयाः मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्॥ १०८॥

अर्थ—इहाँ अन्यवादी तर्क करै जो तुमने वस्तुका स्वरूप नय और उपनयका एकान्तका समूहकूं द्रव्य करि कह्या सो नयनका एकान्तकूं तौ तुम मिथ्या कहते आवो हो सो मिथ्या नयनका समूहभी मिथ्याही होय ताकूं आचार्य्य कहैं हैं। जो मिथ्या नयनका समूह है सो तौ मिथ्या ही है। बहुरि हमारे जैनीनि कै नयनके समूह हैं सो मिथ्या नाहीं। जातै ऐसा कह्या हैं। जे परस्पर अपेक्षा रहित नय हैं ते तो मिथ्या हैं। बहुरि जे परस्पर अपेक्षासहित नय हैं। ते वस्तु स्वरूप हैं। ते अर्थ क्रियाकूं करैं ऐसा वस्तुकूं साधै हैं निरपेक्षपणां है सो तो प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा निराकरण स्वरूप है। बहुरि प्रतिपक्षी धर्मतैं उपेक्षा

कहिए उदासीनतासों सापेक्षपणा है उपेक्षा न होय। अर प्रतिपक्षी धर्मकूं मुख्य करैं तो प्रमाण नयमें विशेष न ठहरे हैं प्रमाण नय दुर्नयका ऐसाही लक्षण वर्णैं है। दोउ धर्मका समान ग्रहण सो तो प्रमाण बहुरि प्रतिपक्षी धर्मतें उपेक्षा सो सुनय बहुरि प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा त्यागसो दुर्नय ऐसैं सर्वका उपसंहार संक्षेप समेटना जाननां ॥ १०८॥

आगैं पूछैं है जो ऐसे अनेकान्तात्मा अर्थ है तो वचन करि कैसे नियम करि कहिए जातैं प्रतिनियत कहिए न्यारे न्यारे पदार्थनि विषैं लोककैं प्रवृत्ति होय ऐसें आशंका होतैं आचार्य्य कहैं हैं।

नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा।
तथान्यथाच सोऽवश्यमविशेषत्वमन्यथा ॥ १०९॥

अर्थ–विध रूप तथा वारण कहिए निषेधरूप ऐसा वाक्य करि अर्थ कहिये पदार्थ सो नियम्यते कहिए नियम रूप करिये हैं। जातैं सो कहिए पदार्थ तथा कहिए तैसा अर अन्यथा करि अन्यसा ऐसा विधि निषेध रूप अवस्य हैं। बहुरि ऐसा न मानिए तो अविशेषत्व कहिए पदार्थ के विशेषण योग्यपणा न होय इहाँ ऐसा जानना जो कछू सत् रूप वस्तु है। सो सर्वही अनेकान्त स्वरूप हैं। जातै ऐसाहोय सोही अर्थ क्रियाका करनेवाला होइ। सर्वथा एकान्त स्वरूप तो अवस्तु है। सो अर्थ क्रिया रहित है। यहतो विधि रूपवाक्य है अन्यमती भी सारे ऐसेंही एकानेक स्वरूप मानैं हैं। परन्तु सर्वथा गोण मुख्य करि एक पक्षकूँ परमार्थ मानि दूजी पक्षका लोप करि अभिप्राय बिगाड़ै हैं। अर मानैं ऐसे हैं बोद्ध मती तौ एक संवदनेकूँ चित्राकार मानैं है। नैय्यायिक ईश्वरके ज्ञानकूँ अनेकाकार मानैं हैं। साख्यामती स्वसंवेदनकूं बुद्धिमें आया पदार्थकूं जानने वाला मानै है मीमसक भी फलज्ञानकूँ स्वसंवेदमानैं स्वरूप अर अर्थनिका जाननेवाला मानै हैं चार्वाकभी प्रत्यक्ष ज्ञानकूँ

अपनां परका जाननेवाला मानैं हैं। ऐसैं एकानेक स्वरूप मानि अर एक पक्षकूँ सर्वथा मुख्य गोण करै तब अभिप्राय विगड्या हो कहिए। ऐसैं तौ यह अनेकान्त स्वरूप वस्तुका विधि वाक्य है। बहुरि तैसैंही निषेध वाक्य है। जो वस्तु तत्त्व है सो किछु भी एकान्त स्वरूप नाहीं है। जातैं सर्वथा एकान्तमें सर्वथा अर्थक्रिया नाहीं हैं। जैसे आकाशके फूलनाहीं है। तातैं अर्थ क्रिया भी नाहीं। ऐसे अन्यवादीनि करि मान्यां जो सर्वथा एकान्तनिकी मान्यका निषेध है। जातैं सर्वथा एकान्त तौ किछू वस्तु नाहीं सो निषेधवे योग्य भी नाहीं अर परवादीनिकी मान्य भावरूप है। ताका निषेध है। ऐसैं विधि प्रतिषेध वाक्य करि वस्तु तत्व नियमरूप कीजिये है। बहुरि तैसें ही तथा अन्यथाका अवस्यभाव है जो तथा अन्यथा न होय तौ पदार्थ विशेष न ठहरैं प्रतिबेध विना विधि विशेषण नाहीं दोउ विशेषण विना विशेष पदार्थ नाहीं। इस ही कथन करि विधि प्रतिषेध दोऊको गौण करि सत् असत् आदि वाक्य विषैं कोई वृत्ति जाननी ॥ १०९ ॥

आगैं अन्यवादी कहै जो वाक्य है सो सर्वथा विधिही करि वस्तु तत्त्वके नियम रूप करै है। ऐसे एकान्त विषैं आचार्य्य दूषणादिखावैं हैं।

तदतद्वस्तुवागेषा तदेवेत्यनुशासती।
न सत्या स्यान्मृषावाक्यैः कथंतत्वार्थदेशना ॥११०॥

अर्थ—वस्तु है सो तत् अतत् ऐसैं दोऊ रूप है। जातैं यहु वाक् कहिए वाणी तत् ही है। ऐसें कहते कैसैं सत्य होय है न होय। बहुरि ऐसें असत्य वाक्यनि करि तत्वार्थका उपदेश कैसैं प्रवर्त्तै असत्य वाक्यकूं कौन मानै। यहाँ ऐसा जानना जो वस्तु है सो तौ प्रत्यक्षादि प्रमाणका विषयभूत सत् असत् आदि विरुद्ध धर्मका आधाररूप है सो

अविरुद्ध है सो अन्यवादि सत् रूपही है तथा असत् रूपही है। ऐसा एकान्त कहैं हैं तौ कहौ वस्तु तौ ऐसैं है नाही वस्तुही अपना स्वरूप अनेकांतात्मक आप दिखावै हैं तौ हम कहा करैं वादी पुकारै है विरुद्ध है रे विरुद्ध है रे तौ पुकारो किछू निरर्थक पुकारनमें साध्य है नाहीं। ऐसें तत् अतत् वस्तुकूँ तत् ही है—ऐसें कहती वाणी मिथ्या है। अर मिथ्या वाक्यनिकरि तत्वार्थ की देशना युक्त नाहीं हैं। ऐसा सिद्ध किया ॥ ११० ॥

आगैं वाक्य है सो प्रतिषेध प्रधान करि ही पदार्थ कूं नियम रूप करै है । ऐसा एकान्त भी श्रेष्ट नाहीं। ऐसा कहैं हैं।

वाक्स्वभावोऽन्यवागर्थप्रतिषेधनिरंकुशः ।
आह च स्वार्थसामान्यं तादृग् वाच्यं खपुष्यवत् ॥१११॥

अर्थ—बचनका यह स्वभाव है। जो अपना अर्थ सामान्यकूं तो कहै है बहुरि अन्य वचनका अर्थका प्रतिषेध अवश्य करै है। तामैं निरंकुश है। बहुरि इहां बौद्धमती कहै, जो अन्य बचनका प्रतिषेध है सो ही वचनका अर्थ निरंकुश होहु स्वार्थ सामान्यतौ कहने मात्र है। किछू वस्तु नाहीं ताकूं आचार्य्य कहै हैं। जो ऐसा बचन तो आकाशके फूलवत् है इहां ऐसा जाननां जो बचनके अपना सामान्य अर्थका तौ प्रतिपादन अर अन्य बचनका अर्थका निषेध सिवाय अन्य किछू कहनेकूं है नाहीं दोउमेंसूं एक न होय तौ बचन कह्या ही न कह्या समान है ताका किछू अर्थ है नाहीं। निश्चयतैं सामान्यतौ विशेष विना अर विशेष सामान्य बिना कहूं दीखै है नाहीं दोऊही वस्तु स्वरूप है। इस सिवाय अन्यापोह कहै तौ किछू है नाहीं तत्वकी प्राप्ति विना केवल बचन कह करि आप तथा परकूं काहेकूं ठिगनां ॥ १११ ॥

आगैं कहैं हैं जो विधि एकान्तकी ज्यों निषेध एकान्तका भी निराकरण तो विस्तार करि पहले कह ही आए बहुरि फिर भी निषेधही बचनका अर्थ कहनेवाले वादीकी आशंका दूर करैं हैं;

सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा ।
अभिप्रेतविशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्यलाच्छनः ॥ ११२ ॥

अर्थ—सामान्य वाणी है सो चेत् कहिए जो विशेष विषैं शब्दार्थ स्वरूप नाहीं हैं । विशैषकूं न जानावै तो ऐसी वाणी मिथ्या ही है। बहुरि अभिप्रेतमें लियाजो विशेष ताकी प्रातिका स्यात्कार है । सो सत्यार्थ लक्षण कहिए चिन्ह है । यह चिन्ह अभिप्रायमें तिष्टते विशेष कूं जानावै है । यहाँ ऐसा जाननाजो बोद्धमती अन्यापोह कहिए अन्यके निषेधमात्र वाक्यका अर्थ कहै है। सो अन्यापोह कुछ वस्तु है नाहीं। वस्तुतो सामान्य विशेषात्मक है । सो सामान्यकूं कहै तब विशेष वक्ताके अभिप्रायमें गम्यमान है । ताकूं भी कहनेवाला सामान्य वचनही है । जातैं याकैं स्यात् पद लागै हैं । सो अभिप्रेत विशेषके जाननेका यह स्यात्कार सत्यार्थ चिन्ह है । बहुरि अभावकूं तौ कहै । अर भावकूं न कहै ऐसा वचनतौ अनुक्त समान है ॥ ११२ ॥

आगैं कहैं हैं जो ऐसा स्याद्वादका निश्चय किया तातैं स्याद्वादही सत्यार्थ है । अन्यवाद सत्यार्थ नाहीं है । ऐसै भगवान समन्तभद्रस्वामी अतिशयरूप कहैं हैं ।

विधेयमीप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्याविरोधि यत् ।
तथैवादेयहेयत्वमिति स्याद्वादसंस्थितिः ॥११३॥

अर्थ—यथा कहिए जैसें जो प्रतिषेध्य पदार्थ सौ अविरोधी विधेय पदार्थ है। सो यह ईप्सितार्थांग कहिए आपके वांछित अभिप्रेत पदार्थका अंगभूत है तैसें ही आदेय हेयत्व कहिए ग्रहण करने योग्य अर त्याग

करने योग्यपणांभी प्रतिषेध्यतैं अविनाभावी है । ऐसैं स्याद्वादकी सम्यक् प्रकार स्थिति है तहां अस्ति इत्यादिक तौ अभिप्रायमें लिया हुआ विधेय है। तहां जो राजाका भय चोरआदिकका भय तैं कुछ विधान करै तो ताकूं विधेय न कहिए जातैं ताका करनेका अभिप्राय नाहीं। बहुरि अभिप्रायमें भी लिया अर विधान न किया सो भी विधेय न कहिये जातैं तिसमें करनेकी योग्यता ही है विधान न भया बहुरि अभिप्रायमें भी न लिया अर कहनेभी न लागा सो किछु विधेय है ही नाहीं, प्रतिषेध्य भी नाहीं तातैं उपेक्षा उदसीनता मात्रही है। बहुरि इन सिवाय अभिप्रायमें लिया अर विधान करै सो विधेय है। सो प्रतिषेध्य जे नास्तित्व आदि तिनतैं अविरुद्ध है। सोही तैसेंही वांछित पदार्थका अंग है । जातैं विधि प्रतिषेधकैं परस्पर अविनाभाव लक्षणपणा है। ऐसैं विधेय प्रतिषेध्य स्वरूपके विशेषतैं स्याद्वाद प्रक्रिया जोडणी। अस्तित्व आदि-विशेष है। सो अपने स्वरूप करि विधेय है प्रातिषेध्य स्वरूप करि विधेय नाहीं है —ऐसे कथंचित् विधेय है। कथंचित् अविधेय है। ऐसैं प्रातिषेध्य पर लगावणां। तैसैंही जीवादि पदार्थनि पर लगावणां कथंचित् विधेय। कथंचित् प्रातिषेध्य। ऐसैं स्याद्वादका सम्यक् स्थिति युक्ति शास्त्रतैं अविरोध सधै है। अर पहलैं भाव एकान्त इत्यादि विषैंही विधि प्रातिषेधके विरोध आविरोधका समर्थन किया है। तातैं श्री समंतभद्रआचार्य्य भगवान प्रति कहैं हैं। जो हे भगवन् हमनैं निर्वाध निश्चय किया है जो युक्तिशास्त्रतैं अविरोधी बचन पणांतैं तुम ही निरदोष हौ। अन्य नाहीं हैं तिनके वचन निर्वाध नाहीं हैं ॥ ११३ ॥

अव यह अप्तमीमांसाका प्रारंभ कियाथा ताका निर्वहण अर आपके ताका फलकों आचार्य्य प्रकाशैं हैं।

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छता ।
सम्यङ्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥ ११४ ॥

अर्थ—इति कहिए ऐसें दस परिच्छेद स्वरूप यह अप्तमीमांसा सर्वज्ञ विशेषकी परीक्षा है सो हितकूं इच्छते जे भव्यजीव तिनकैं सम्यक् उपदेश अर मिथ्या उपदेश तिनका विशेष सामर्थ्य असत्यार्थ ताकी प्रतिपत्ती हेय उपादेयरूप जानना । श्रद्धान करणां आचारण करणां ताके अर्थि हम रची है ऐसें आचार्य्यनिनें अपना अभिप्रेत प्रभोजन कह्या है । सो आर्य सत्पुरुषनिकैं विचारने योग्य है तहां हित तो मोक्ष तथा तिसका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र जाननें । बहुरि सम्यक् उपदेशतौ मोक्षका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रका कहना है । बहुरि मिथ्या उपदेश ज्ञान ही तैं मोक्ष है इत्यादि कहैं हैं । बहुरि शास्त्रका आरंभ विषैं आप्तका स्तवन मोक्ष मार्गके नेता कर्म्मभूभृतके भेत्ता विश्वतत्वके ज्ञाता ऐसा किया ताकी यह परीक्षा करी है याही तैं याका नाम आप्तमीमांसा है । और आदि अक्षरके नामसे देवागम स्तोत्र है । ऐसैं जानना । आप्तकी परीक्षा की विशेष चरचा जान्या चाहौ तो अष्टसहस्री तैं जानियो यहां अर्थ संक्षेप लिखा है ॥ ११४ ॥

जयति जगति क्लेशावेशप्रपंच हिमांशुमान्,
विहतविषमैकान्तध्वान्त प्रमाणनयांशुभान् ।
यतिपतिरजो यस्या धृष्यान्मताम्बुनिधेर्लवान्,
स्वमतमतयस्तीर्थ्यानानापरे समुपासते ॥[1]

१ यह पद्य वसुनन्दिसैद्धान्तिककीवृत्तिके अन्तमें ग्रंथ समाप्तिका मंगलाचरण रूप है । परंतु पं० जयचंद्रजी छावडानें इसकी भाषा वचनिका नहीं लिखी है । शायद अष्टसहस्री कारके मतके अनुसार ग्रंथकर्ताकी कृति नहीं समझ कर पंडितजीने भाषा वचनिका करनेसे इसे छोड़ दिया हो ।

चौपाई ॥

ज्ञान अज्ञान मोक्ष अरु बन्ध । संततिकी उत्पत्ती संबंध ॥
नय प्रमाण इन सबकी रीति स्याद्वाद भाषी मुनि नीति ॥ १ ॥

इति श्री आप्तमीमांसा नाम देवागमस्तोत्रकी देश भाषा मय
वाचनिका विषैं दसमा—परिच्छेद समाप्त भया ॥१०॥
यहाँ तांई कारिका एकसौ चौदह भई ॥ ११४ ॥

सवैया २३ सा ॥

घाति निवार भये अरहंत अघातिनिवारि सुसिद्ध कहाए ।
पंच अचार समारि अचारिज भव्यानि तारतरे श्रुत गाये ॥
अंग उपंग पढ़ै उवझाय पढ़ाय घणे शिव राह लगाये ।
साधु सवै गुणमूलधरै तव साधय मोक्ष नमों मन भाये ॥ १ ॥

। दोहा ।

मंगल कारण पंच गुरु । नमों विघ्नकी हानि ।
ग्रन्थ अंति मंगल अरथ । नमस्कार ममजान ॥ २ ॥
समंतभद्र अकलंक पुनि । विद्यानंदि सुजानि ।
इनके चरन नमों सदा । साधुत्रयी गुणखानि ॥ ३ ॥

सवैया २३ सा ॥

देश ढुंढाहरु जैपुर थान महान नरेश जगेश विराजै ।
न्याय चलैं सवलोक भलैं विधि वात्सल है सुख सों डर भाजे ।
जैन जनाव हुते तिनमें जु अध्यातम शैलि भली सुसमाजै ।
हौं तिनमैं जयचंद सुनाम क्रियो यह काम पढ़ो निज काजैं ॥४॥

दोहा ॥

अष्टा दश सत साठि षट् विक्रम सम्बतजानि ।
चैत्र कृष्णचोदस दिवस पूर्ण वाचनिका मानि । ५ ॥

इति ।